ग्रंथ-संख्या—१३५

प्रकाशक तथा विक्रेता

भारती-भण्डार

लीडर प्रेस, इलाहाबाद

प्रथम-संस्करण

सं० २००६ वि०

मूल्य ५)

श्रीसुमित्रानन्दन पंत

विज्ञापन

'युगपथ' दो भागों में विभक्त है। पहला भाग 'युगांत'—है, जो प्रथम बार सन् १९३६ में स्वतंत्र पुस्तक के रूप में प्रकाशित हुआ था, जिसमें सन्,' ३४ से लेकर,' ३६ तक की मेरी तैंतीस छोटी-बड़ी रचनाएँ संकलित हैं। पहिले संस्करण की भूमिका का उल्लेखनीय अंश इस प्रकार है,—'युगांत' में 'पल्लव' की कोमल कांत कला का अभाव है। इसमें मैंने जिस नवीन क्षेत्र को अपनाने की चेष्टा की है, मुझे विश्वास है, भविष्य में उसे मैं अधिक परिपूर्ण रूप में ग्रहण एवं प्रदान कर सकूँगा।'

दूसरा भाग 'युगांतर' है, जिसमें मेरी इधर की कुछ नवीन रचनाएँ संगृहीत हैं, जिनमें से अधिकांश बापू जी के देह-निधन के बाद उनकी पुण्य स्मृति के प्रति श्रद्धांजलि के रूप में लिखी गई थीं। शेष रचनाओं में तीन अतुकांत हैं, जिनमें से प्रमुख 'कवीन्द्र रवीन्द्र के प्रति' शीर्षक कविता है, जो उनके श्राद्धवासर के अवसर पर अगस्त के महीने में लिखी गई थी।

'युगांत' की कलेवर-वृद्धि की दृष्टि से भी, उसके साथ कुछ नवीन कविताओं को सम्मिलित कर देना उचित समझा गया, जो अब प्रस्तुत संग्रह के रूप में पाठकों के पास पहुँच रहा है।

प्रयाग,
१ अक्टूबर, ४८

श्री सुमित्रानंदन पंत

युगांत

पूज्य पितृव्य
श्री हंसादत्त जी पंत के
कर कमलों में

सूची

१

द्रुत झरो जगत के जीर्ण पत्र,
हे स्रस्तध्वस्त, हे शुष्कशीर्ण !
हिम-ताप-पीत, मधुवात-भीत,
तुम वीतराग, जड़, पुराचीन !!

निष्प्राण विगतयुग ! मृत विहंग !
जगनीड़ शब्द औ' श्वासहीन,
च्युत, अस्तव्यस्त पंखों-से तुम
झरझर अनंत में हो विलीन !

कंकाल-जाल जग में फैले
फिर नवल रुधिर,—पल्लवलाली !
प्राणों की मर्मर से मुखरित
जीवन की मांसल हरियाली !

मंजरित विश्व में यौवन के
जग कर जग का पिक, मतवाली
निज अमर प्रणय-स्वर मदिरा से
भरदे फिर नव युग की प्याली !

(फरवरी '३८)

२

गा, कोकिल, बरसा पावककण !
नष्टभ्रष्ट हो जीर्णपुरातन,
ध्वंसभ्रंस जग के जड़ बंधन !
पावक-पग धर आवे नूतन,
हो पल्लवित नवल मानवपन !

गा, कोकिल, भर स्वर में कंपन !
झरें जाति-कुल-वर्ण-पर्ण घन,
अंधनीड़-से रूढ़ि रीति छन,
व्यक्ति-राष्ट्र-गत राग-द्वेष रण,
झरें, मरें विस्मृति में तत्क्षण !

गा, कोकिल, गा,—कर मत चिन्तन !
नवल रुधिर से भर पल्लव-तन,
नवल स्नेह-सौरभ से यौवन,
कर मंजरित नव्य जगजीवन,
गूँज उठें पी-पी मधु नव जन !

गा, कोकिल, नव गान कर सृजन !

रच मानव के हित नूतन मन,
वाणी, वेश, भाव नव शोभन,
स्नेह, सुहृदता हो मानस-धन,
करें मनुज नव जीवनयापन !

, कोकिल, संदेश सनातन !

मानव दिव्य स्फुलिंग चिरंतन,
वह न देह का नश्वर रजकण !
देशकाल हैं उसे न बंधन,
मानव का परिचय मानवपन !

कोकिल, गा, मुकुलित हों दिशि[illegible]

३

झर पड़ता जीवन-डाली से
मैं पतझड़ का सा जीर्णपात !—
केवल, केवल जग-कानन में
लाने फिर से मधु का प्रभात !

मधु का प्रभात !—लदलद जातीं
वैभव से जग की डालडाल,
कलिकलि, किसलय में जल उठती
सुंदरता की स्वर्गीयज्वाल !

नव मधुप्रभात !—गूँजते मधुर
उरउर में नव आशाऽभिलाष,
सुख-सौरभ, जीवन-कलरव से
भर जाता सूना महाकाश !

आः मधुप्रभात !—जग के तम में
भरती चेतना अमर प्रकाश,
मुरझाए मानसमुकुलों में
पाती नव मानवता विकास !

मधुप्रात ! मुक्त-नभ में सस्मित
नाचती धरित्री मुक्तपाश !
रविशशि केवल साक्षी होते
अविराम प्रेम करता प्रकाश !

मैं झरता जीवन-डाली से
साह्लाद, शिशिर का शीर्ण पात !
फिर से जगती के कानन में
आ जाता नवमधु का प्रभात !

(एप्रिल '३५)

४

चंचल पग दीपशिखा के धर
गृह, मग, वन में आया वसंत!
सुलगा फाल्गुन का सूनापन
सौन्दर्यशिखाओं में अनंत!

सौरभ की शीतल ज्वाला से
फैला उरउर में मधुर दाह
आया वसंत, भर पृथ्वी पर
स्वर्गिक सुंदरता का प्रवाह!

पल्लवपल्लव में नवल रुधिर
पत्रों में मांसलरंग खिला,
आया नीलीपीली लौ से
पुष्पों के चित्रित दीप जला!
अधरों की लाली से चुपके
कोमल गुलाब के गाल लजा,
आया, पंखड़ियों को काले—
पीले धब्बों से सहज सजा!

कलि के पलकों में मिलनस्वप्न,
अलि के अंतर में प्रणयगान
लेकर आया, प्रेमी वसंत,—
आकुल जड़चेतन स्नेहप्राण!

काली कोकिल!—सुलगा उर में
स्वरमयी वेदना का अँगार,
आया वसंत, घोषित दिगंत
करती, भर पावक की पुकार!
आः, प्रिये! निखिल ये रूपरंग
रिलमिल अंतर में स्वर अनंत
रचते सजीव जो प्रणयमूर्ति
उसकी छाया, आया वसंत!

५

विद्रुम औ' मरकत की छाया,
सोनेचाँदी का सूर्यातप,
हिमपरिमल की रेशमी वायु,
शतरत्न-छाय, खगचित्रित नभ !

पतझड़ के कृश, पीले तन पर
पल्लवित तरुण लावण्य लोक;
शीतल हरीतिमा की ज्वाला
दिशिदिशि फैली कोमलालोक !

आह्लाद, प्रेम औ' यौवन का
नव स्वर्ग : सद्य सौन्दर्यसृष्टि,
मंजरित प्रकृति, मुकुलित दिगंत,
कूजनगुंजन की व्योमवृष्टि !

—लो, चित्रशलभ सी, पंख खोल
उड़ने को अब कुसुमित घाटी,—
यह है, अल्मोड़े का वसंत,
खिल पड़ीं निखिल पर्वतपाटी !

६

जगती के जन-पथ, कानन में
तुम गाओ विहग ! अनादि गान,
चिर शून्य शिशिरपीड़ित जग में
निज अमर स्वरों से भरो प्राण !

जल, स्थल, समीर, नभ में व्यापक
छेड़ो उर की पावकपुकार,
व़हुंशाखाओं की जगती में
बरसा जीवन-संगीत प्यार !

तुम कहो, गीतखग ! डालों में
जो जाग पड़ीं कलियाँ अजान,
वह विटपों का श्रम-पुण्य नहीं
मधु ऋतु का मुक्त, अनंत दान !

जो सोए स्वप्नों के तम में
वे जागेंगे—यह सत्य बात,
जो देख चुके जीवननिशीथ
वे देखेंगे जीवनप्रभात !

७

वे चहक रहीं कुंजों में चंचल सुंदर
चिड़ियाँ, उर का सुख बरस रहा स्वरस्वर पर !
पत्रोंपुष्पों से टपक रहा स्वर्णातप
प्रातः समीर के मृदु स्पर्शों से कँपकँप !
शत कुसुमों में हँस रहा कुंज उडु-उज्वल,
लगता सारा जग सद्यःस्मित ज्यों शतदल !
है पूर्ण प्राकृतिक सत्य ! किन्तु मानव-जग !
क्यों म्लान तुम्हारे कुंज, कुसुम, आतप, खग ?
जो एक, असीम, अखंड, मधुर व्यापकता
खो गई तुम्हारी वह जीवन सार्थकता !
लगती विश्री औ' विकृत आज मानवकृति,
एकत्वशून्य है विश्व मानवी संस्कृति !

(मई '३५)

८

वे डूब गए—सब डूब गए
दुर्दम, उदग्रशिर अद्रिशिखर!
स्वप्नस्थ हुए स्वर्णातप में
लो, स्वर्णस्वर्ण अब सब भूधर!
पल में कोमल पड़, पिघल उठे
सुंदर बन, जड़, निर्मम प्रस्तर,
सब मंत्रमुग्ध हो, जड़ित हुए,
लहरों-से चित्रित लहरों पर!

मानवजग में गिरिकारा सी
गतयुग की संस्कृतियाँ दुर्धर
बंदी की हैं मानवता को
रच देशजाति की भित्ति अमर!
ये डूबेंगी—सब, डूबेंगी
पा नव मानवता का विकास,
हँस देगा स्वर्णिम वज्र-लौह
छू मानवआत्मा का प्रकाश!

(एप्रिल '३६)

६

तारों का नभ ! तारों का नभ !
सुंदर, समृद्ध आदर्श सृष्टि !
जग के अनादि पथदर्शक वे,
मानव पर उनकी लगी दृष्टि !
देवबाल भू को घेरे
भावी भव की कर रहे पुष्टि !

सेबों की कलियों सा प्रभूत
वह भावी जगजीवन विकास !
मानव का विश्वमिलन पवित्र,
चेतन आत्माओं का प्रकाश !

तारों का नभ ! तारों का नभ !
अंकित अपूर्व आदर्शसृष्टि !
शाश्वत शोभा का खिला स्वर्ग,
अब होने को है पुष्पवृष्टि !
चाँदनी चेतना की अमंद
अगजग को छू दे रही तुष्टि !

(अक्टूबर '३५)

१०

जीवन का फल, जीवन का फ़ल !
यह चिर यौवनश्री से मांसल !

इसके रस में आनंद भरा,
इसका सौन्दर्य सदैव हरा,
पा दुखसुख का छायाप्रकाश
परिपक्व हुआ इसका विकास,
इसकी मिठास है मधुर प्रेम,
औ' अमर बीज चिर विश्वक्षेम !

जीवन का फल, जीवन का फल !
इसका रस लो,—हो जन्म सफल।

तीखे, चमकीले दाँत चुभा
चाबो इसको, क्यों रहे लुभा ?
निर्भीक बनो, साहसी, शक्त,
जीवनप्रेमी,—मत हो विरक्त !
सुन्दर : इच्छा की धरो आग,
प्रिय जगती पर दयिताऽनुराग !

११

बढ़ो अभय, विश्वासचरण धर!
सोचो वृथा न, भवभयकातर!
ज्वाला के विश्वास के चरण,
जीवनमरण समुद्र संतरण,
सुखदुख की लहरों के शिर पर
पग धर, पार करो भवसागर!
बढ़ो, बढ़ो विश्वासचरण धर!

क्या जीवन? क्यों? क्या जगकारण?
पापपुण्य, सुखदुख का वारण?
व्यर्थ तर्क! यह भव लोकोत्तर
बढ़ती लहर, बुद्धि से दुस्तर!
पार करो विश्वासचरण धर!

जीवन-पथ तमिस्रमय निर्जन,
हरती भव-तम एक लघु किरण
यदि विश्वास हृदय में अणुभर
देंगे पथ तुमको गिरिसागर
बढ़ो, अमर विश्वासचरण धर!

(मई '३५)

१२

गर्जन कर मानवकेशरि !
मर्मस्पृह गर्जन,—
जग जावे जग में फिर से
सोया मानवपन !

काँप उठे मानस की अंध
गुहाओं का तम,
अक्षम क्षमताशील बनें,
जावें दुविधा, भ्रम !

निर्भय जगजीवन, कानन में
कर हे विचरण,
काँप, मरें गत खर्व मनुजता के
मर्कट गण !

प्रखर नखर नव जीवन की
लालसा गड़ा कर
छिन्नभिन्न करदे गतयुग के
शव को, दुर्धर !

१३

बाँसों का झुरमुट—
संध्या का झुटपुट—
हैं चहक रहीं चिड़ियाँ
टी-वी-टी—टुट्-टुट् !

वे ढाल ढाल कर उर अपने
हैं बरसा रहीं मधुर सपने
श्रमजर्जर विधुर चराचर पर,
गा गीत स्नेहवेदना सने!

ये नाप रहे निज घर का मग
कुछ श्रमजीवी धर डगमग डग,
भारी है जीवन ! भारी पग !

आः, गागा शतशत सहृदय खग,
संध्या बिखरा निज स्वर्ण सुभग
औ' गंधपवन झल मंद व्यजन
भर रहे नयाँ इनमें जीवन,
ढ़ीली हैं जिनकी रगरग !

——यह लौकिक औ' प्राकृतिक कला,
यह काव्य अलौकिक सदा चला
आरहा,——सृष्टि के साथ पला !

\+ + +

गा सके खगों सा मेरा कवि
विश्री जग की संध्या की छबि !
गा सके खगों सा मेरा कवि,
फिर हो प्रभात,–फिर आवे रवि !

१४

जगजीवन में जो चिर महान
सौन्दर्यपूर्ण औ' सत्यप्राण,
मैं उसका प्रेमी बनूँ, नाथ!
जिसमें मानव हित हो समान!

जिससे जीवन में मिले शक्ति,
छूटें भय, संशय, अंधभक्ति,
मैं वह प्रकाश बन सकूँ, नाथ!
मिल जावें जिसमें अखिल व्यक्ति!

दिशिदिश में प्रेमप्रभा प्रसार,
हर भेदभाव का अंधकार,
मैं खोल सकूं चिर मुँदे, नाथ!
मानव के उर के स्वर्गद्वार!

पाकर, प्रभु! तुमसे अमर दान
करने मानव का परित्राण,
ला सकूं विश्व में एक बार
फिर से नव जीवन का विहान!

(मई '६५)

१५

जो दीनहीन, पीड़ित, निर्बल,
मैं हूँ उनका जीवनसंबल !
जो मोहछिन्न, जग में विभक्त,
वे मुझ में मिलें, बनें सशक्त !
जो अहंपूर्ण, वे अंधकूप,
जो नम्र, उठे बन कीर्तिस्तूप !
जो छिन्नभिन्न, जलकण असार,
जो मिले, बने सागर अपार !
जग नामरूपमय अंधकार,
मैं चिरप्रकाश, मैं मुक्तिद्वार !

१६

शत वाहुपाद, शत नामरूप,
शत मन, इच्छा, वाणी, विचार,
शत रागद्वेष, शत क्षुधाकाम,—
यह जगजीवन का अंधकार!

शत मिथ्या वादविवाद, तर्क,
शत रूढ़िनीति, शत धर्मद्वार,
शिक्षा, संस्कृति, संस्था, समाज,—
यह पशुमानव का अहंकार!

—यह दिशिपल का तम, इन्द्रजाल,
वहु भेदजन्य, भव क्लेशभार,
प्रभु! वाँध एकता में अपनी
भर दें इसमें अमरत्वसार!

(मई '३५)

१७

ए मिट्टी के ढेले अजान!
तू जड़ अथवा चेतना-प्राण?
क्या जड़ता-चेतनता समान,
निर्गुण, निसंग, निस्पृह, वितान?

क़ितने तृण, पौधे, मुकुल, सुमन,
संसृति के रूपरंग मोहन,
ढीले कर तेरे जड़ बंधन
आए औ' गए! (यही क्या मन?)

अब हुआ स्वप्न मधु का जीवन,
विस्मृतसुखदुख, स्मृति के बंधन!
खुल गया शून्यमय अवगुंठन
अज्ञेय सत्य तू जड़चेतन!

१८

खोगई स्वर्ग की स्वर्णकिरण
छू, जगजीवन का अंधकार,
मानस के सूने-से तम को
दिशिपल के स्वप्नों में सँवार!

गुँथ गए अजान तिमिरप्रकाश
दे-दे जगजीवन को विकास,
वह रूपरंगरेखाओं में
भर विरहमिलन का अश्रुहास!

धुन जग का दुर्गम अंधकार,
चुन नामरूप का अमृत सार,
मैं खोज रहा खोया प्रकाश
सुलझा जीवन के तारतार!

खो गई स्वर्ग की अमर किरण
कुसुमित कर जग का अंधकार,
जाने कब भूल पड़ा निज को
मैं उसको फिर इसको निहार!

(एप्रिल '३३)

१६

सुंदरता का आलोकस्रोत
है फूट पड़ा मेरे मन में,
जिससे नव जीवन का प्रभात
होगा फिर जग के आँगन में !

मेरा स्वर होगा जग का स्वर,
मेरे विचार जग के विचार,
मेरे मानस का स्वर्गलोक
उतरेगा भू पर नई बार !

सुंदरता का संसार नवल
अंकुरित हुआ मेरे मन में,
जिसकी नव मांसल हरीतिमा
फैलेगी जग के गृहवन में !

होगा पल्लवित रुधिर मेरा
बन जग के जीवन का वसंत,
मेरा मन होगा जग का मन,
औ' मैं हूँगा जग का अनंत !

मैं सृष्टि एक रच रहा नवल
भावी मानव के हित, भीतर,
सौन्दर्य, स्नेह, उल्लास मुझे
मिल सका नहीं जग में बाहर !

'३६)

नव हे, नव हे!
नव नव सुषमा से मंडित हो
चिर पुराण भव हे!
नव हे!

नव ऊषा-संध्या अभिनंदित
नव नव ऋतुमयि भू, शशि-शोभित,
विस्मित हो, देखूँ मैं अतुलित
जीवन वैभव हे!
नव हे!

नव शैशव यौवन हिल्लोलित
जन्म मरण से हो जग दोलित,
नव इच्छाओं का हो उर में
आकुल पिक रव हे!
नव हे!—

बाँधे रहें मुक्ति को बंधन,
हो सीमा असीम अवलंबन,
द्वार खड़े हों नित नव सुख दुख,
विजय पराभव हे!
नव हे!

अपनी इच्छा से निर्मित जग,
कल्पित सुखदुख के अस्थिर पग,
मेरे जीवन से हो जीवित
यह जग का शव है !
नव है !

बाँधोऽ, छबि के नव बंधन बाँधो !
नव नव आशाऽकांक्षाओं में
तन मन जीवन बाँधो !
छबि के नव—

भाव रूप में, गीत स्वरों में,
गंध कुसुम में, स्मिति अधरों में,
जीवन की तमिस्र वेणी में
निज प्रकाश कण बाँधो !
छबि के नव—

सुख से दुख औ' प्रलय से सृजन,
चिर आत्मा से अस्थिर रजतन,
महामरण को जगजीवन का
दे आलिंगन, बाँधो !
छबि के नव—

वाँधो जलनिधि लघु जलकण में,
महाकाल को कवलित क्षण में,
फिर फिर अपनेपन को मुझ में
चिर जीवन धन ! वाँधो
छवि के नव--

२२

मंजरित आम्रवन छाया में
हम प्रिये, मिले थे प्रथम बार,
ऊपर हरीतिमा-नभ गुंजित,
नीचे चंद्रातप छना स्फार!

तुम मुग्धा थी, अति भावप्रवण,
उकसे थे अँबियों-से उरोज,
चंचल, प्रगल्भ, हँसमुख, उदार,
मैं सलज,—तुम्हें था रहा खोज!
छनती थी ज्योत्स्ना शशिमुख पर,
मैं करता था मुखसुधा पान,—
कूकी थी कोकिल, हिले मुकुल,
भर गए गंध से मुग्ध प्राण!

तुमने अधरों पर धरे अधर,
मैंने कोमलवपु भरा गोद,
था आत्मसमर्पण सरल, मधुर,
मिल गए सहज मारुतामोद!
मंजरित आम्रद्रुम के नीचे
हम प्रिये, मिले थे प्रथमबार,
मधु के कर में था प्रणयबाण,
पिक के उर में पावकपुकार!

२३

वह विजन चाँदनी की घाटी
छाई मृदु वनतरुगंध जहाँ,
नीबूआड़ू के मुकुलों के
मद से मलयानिल लदा वहाँ !

सौरभश्लथ हो जाते तनमन,
बिछते झरझर मृदु सुमनशयन,
जिन पर छन, कंपित पत्रों से,
लिखती कुछ ज्योत्स्ना जहाँ-तहाँ !

आ कोकिल का कोमल कूजन,
उकसाता आकुल उरकंपन,
यौवन का री वह मधुर स्वर्ग,
जीवनबाधाएँ वहाँ कहाँ ?

छाया ?

वह लेटी है तरु-छाया में,
संध्या-विहार को आया मैं !

मृदु बाँह मोड़, उपधान किए,
ज्यों प्रेमलालसा पान किए,
उभरे उरोज, कुंतल खोले,
एकाकिनि, कोई क्या बोले ?

वह सुंदर है, साँवली सही,
तरुणी है,—हो षोड़शी रही,
विवसना, लतासी तन्वंगिनि,
निर्जन में क्षण भर की संगिनि !

वह जागी है अथवा सोई
मूर्छित या स्वप्नमूढ़ कोई ?
नारी कि अप्सरा या माया ?
अथवा केवल तरु की छाया ?

छाया

खोलो, मुख से घूँघट खोलो,
हे चिर अवगुंठनमयि, बोलो!
क्या तुम केवल चिर अवगुंठन,
अथवा भीतर जीवनकंपन?
कल्पना मात्र मृदु देहलता,
पा ऊर्ध्व ब्रह्म, माया विनता!
है स्पृश्य, स्पर्श का नहीं पता,
है दृश्य, दृष्टि पर सके बता!

पट पर पट केवल तम अपार,
पट पर पट खुले, न मिला पार!
सखि, हटा अपरिचय अंधकार
खोलो रहस्य के मर्म द्वार!
मैं हार गया तह छीलछील,
आँखों से प्रिय छवि लीललील,
मैं हूँ या तुम? यह कैसा छल!
या हम दोनों, दोनों के बल?

तुम में कवि का मन गया समा,
तुम कवि के मन की हो सुषमा,
हम दो भी हैं या नित्य एक ?
तब कोई किसको सके देख ?

ओ मौन चिरंतन, तम प्रकाश,
चिर अवचनीय, आश्चर्यपाश !
तुम अतल गर्त, अविगत, अकूल,
फैली अनंत में बिना मूल !
अज्ञेय, गुह्य, अगजग छाई,
माया, मोहिनि, सँग-सँग आई !
तुम कुहुकिनि, जग की मोहनिशा,
मैं रहूँ सत्य, तुम रहो मृषा !

शुक्र !

द्वाभा के एकाकी प्रेमी,
नीरव दिगंत के शब्द मौन,
रवि के जाते, स्थल पर आते
कहते तुम तम से चमक—कौन ?

संध्या के सोने के नभ पर
तुम उज्वल हीरक सदृश जड़े,
उदयाचल पर दीखते प्रात
अँगूठे के बल हुए खड़े !

अब सूनी दिशि औ' श्रांत वायु,
कुम्हलाई पंकजकली सृष्टि,
तुम डाल विश्व पर करुणप्रभा
अविराम कर रहे प्रेमवृष्टि !
ओ छोटे शशि, चाँदी के उडु !
जब जब फैले तम का विनाश,
तुम दिव्यदूत-से उतर शीघ्र
बरसाओ निज स्वर्गिक प्रकाश !

खद्योत

अँधियाली घाटी में सहसा
हरित स्फुलिंग सदृश फूटा वह !
वह उड़ता दीपक निशीथ का,—
तारा सा आकर टूटा वह !

जीवन के इस अंधकार में
मानवआत्मा का प्रकाशकण
जग सहसा, ज्योतित कर देता
मानस के चिर गुह्य कुंजवन !

सृष्टि

मिट्टी का गहरा अंधकार
डूबा है उसमें एक बीज,—
वह खो न गया, मिट्टी न बना,
कोदों, सरसों से क्षुद्र चीज !

उस छोटे उर में छिपे हुए
हैं डालपात औ' स्कंधमूल
गहरी हरीतिमा की संसृति,
बहु रूपरंग, फल और फूल !
वह है मुट्ठी में बंद किए
वट के पादप का महाकार,
संसार एक ! आश्चर्य एक !
वह एक बूंद, सागर अपार !

बंदी उसमें जीवन अंकुर
जो तोड़ निखिल जग के बंधन,—
पाने को है निज सत्व,–मुक्ति !
जड़ निद्रा से जग, बन चेतन !

मानव :

सुंदर हैं विहग, सुमन सुंदर,
मानव ! तुम सबसे सुंदरतम,
निर्मित सबकी तिलसुषमा से
तुम निखिल सृष्टि में चिर निरुपम !
यौवनज्वाला से वेष्टित तन,
मृदु त्वच, सौन्दर्यप्ररोह अंग,
न्योछावर जिनपर निखिल प्रकृति,
छायाप्रकाश के रूपरंग !

धावित कृश नील शिराओं में
मदिरा से मादक रुधिरधार,
आँखें हैं दो लावण्यलोक,
स्वर में निसर्ग संगीतसार !
पृथु उर, उरोज, ज्यों सर, सरोज,
दृढ़ बाहु प्रलंब प्रेमबंधन,
पीनोरु स्कंध जीवनतरु के,
कर, पद, अंगुलि, नखशिख शोभन !

यौवन की मांसल, स्वस्थ गंध,
नव युग्मों का जीवनोत्सर्ग !
अह्लाद अखिल, सौन्दर्य अखिल,
औ' प्रथमप्रेम का मधुर स्वर्ग !
आशाऽभिलाष, उच्चाकांक्षा,
उद्यम अजस्र, विघ्नों पर जय,
विश्वास, असद्सद् का विवेक,
दृढ़ श्रद्धा, सत्य-प्रेम अक्षय !
मानसी भूतियाँ ये अमंद,
सहृदयता, त्याग, सहानुभूति,—
जो स्तंभ सभ्यता के पार्थिव,
संस्कृति स्वर्गीय,—स्वभाव-पूर्ति !

मानव का मानव पर प्रत्यय,
परिचय, मानवता का विकास,
विज्ञानज्ञान का अन्वेषण,
सब एक, एक सब में प्रकाश !
प्रभु का अनंत वरदान तुम्हें,
उपभोग करो प्रतिक्षण नवनव,
क्या कमी तुम्हें है त्रिभुवन में
यदि बने रह सको तुम मानव !

(एप्रिल '३५)

तितली

नीली, पीली औ चटकीली
पंखों की प्रिय पँखड़ियाँ खोल,
प्रिय तितली ! फूल सी ही फूली
तुम किस सुख में हो रही डोल ?
चाँदी सा फैला है प्रकाश,
चंचल अंचल सा मलयानिल,
है दमक रही दोपहरी में
गिरिघाटी सौ रंगों में खिल !

तुम मधु की कुसुमित अप्सरि सी
उड़उड़ फूलों को बरसाती,
शत इंद्रचाप रचरच प्रतिपल
किस मधुर गीतिलय में जाती ?
तुमने यह कुसुम-विहग लिवास
क्या अपने सुख से स्वयं बुना ?
छायाप्रकाश से या जग के
रेशमी परों का रंग चुना ?

क्या बाहर से आया, रंगिणि !
उर का यह आतप, यह हुलास ?
या फूलों से ली अनिल-कुसुम !
तुमने मन के मधु की मिठास ?
चाँदी का चमकीला आतप,
हिम-परिमल चंचल मलयानिल,
है दमक रही गिरि की घाटी
शत रत्न-छाय रंगों में खिल

'—चित्रिणि ! इस सुख का स्रोत कहाँ
जो करता नित सौन्दर्यसृजन ?'
'वह स्वर्ग छिपा उर के भीतर'—
क्या कहती यही, सुमन-चेतन ?

संध्या

कहो, तुम रूपसि कौन ?
व्योम से उतर रही चुपचाप
छिपी निज छायाछवि में आप,
सुनहला फैला केशकलाप
मधुर, मंथर, मृदु, मौन !

मूँद अधरों में मधुपालाप,
पलक में निमिष, पदों में चाप,
भावसंकुल, बंकिम, भ्रू चाप,
मौन, केवल तुम मौन !

ग्रीव तिर्यक, चंपकद्युति गात,
नयन मुकुलित, नत मुखजलजात,
देह छबि-छाया में दिन-रात,
कहाँ रहती तुम कौन ?

अनिल पुलकित स्वर्णांचल लोल,
मधुर नूपुरध्वनि खगकुल रोल,
सीप-से जलदों के पर खोल,
उड़ रही नभ में मौन !

संध्या

लाज से अरुणअरुण सुकपोल,
मदिर अधरों की सुरा अमोल,—
बने पावसघन स्वर्णहिंदोल,
कहो, एकाकिनि, कौन?
मधुर, मंथर तुम मौन!

बापू के प्रति

तुम मांसहीन, तुम रक्तहीन,
हे अस्थिशेष ! तुम अस्थिहीन,
तुम शुद्धबुद्ध आत्मा केवल,
हे चिर पुराण, हे चिर नवीन !
तुम पूर्ण इकाई जीवन की,
जिसमें असार भव-शून्य लीन
आधार अमर, होगी जिसपर
भावी की संस्कृति समासीन !

तुम मांस, तुम्हीं हो रक्तअस्थि,--
निर्मित जिनसे नवयुग का तन,
तुम धन्य ! तुम्हारा निःस्वत्याग
है विश्वभोग का वर साधन;
इस भस्मकाम तन की रज से
जग पूर्णकाम नव जगजीवन
बीनेगा सत्यअहिंसा के
तानेबानों से मानवपन !

ादियों का दैन्य तमिस्र तूम,
ुन तुमने कात प्रकाशसूत,
ृ नग्न ! नग्न पशुता ढँकदी
ुन नव संस्कृत मनुजत्व पूत !
जग पीड़ित छूतों से प्रभूत,
ू अमृत स्पर्श से, हे अछूत !
ुमने पावन कर, मुक्त किए
मृत संस्कृतियों के विकृत भूत !

सुखभोग खोजने आते सब,
आए तुम करने सत्य खोज,
जग की मिट्टी के पुतले जन,
तुम आत्मा के, मन के मनोज !
जड़ता, हिंसा, स्पर्धा में भर
चेतना, अहिंसा, नम्रओज,
पशुता का पंकज बना दिया
तुमने मानवता का सरोज !

पशुबल की कारा से जग को
दिखलाई आत्मा की विमुक्ति,
विद्वेष, घृणा से लड़ने को
सिखलाई दुर्जय प्रेमयुक्ति;
वर श्रम-प्रसूति से की कृतार्थ
तुमने विचारपरिणीत उक्ति,
विश्वानुरक्त हे अनासक्त
सर्वस्वत्याग को बना भुक्ति !

सहयोग सिखा शासितजन को
शासन का दुर्वह हरा भार,
होकर निरस्त्र, सत्याग्रह से
रोका मिथ्या का बलप्रहार;
वह भेदविग्रहों में खोई
ली जीर्ण जाति क्षय से उबार,
तुमने प्रकाश को कह प्रकाश,
औ' अंधकार को अंधकार !

उर के चरखे में कात सूक्ष्म
युगयुग का विषयजनित विषाद,
गुंजित कर दिया गगन जग का
भर तुमने आत्मा का निनाद !
रँग रँग खद्दर के सूत्रों में
नव जीवनआशा, स्पृहा, ह्लाद
मानवी कला के सूत्रधार !
हर दिया यंत्रकौशलप्रवाद !

जड़वाद जर्जरित जग में तुम
अवतरित हुए आत्मा महान,
यंत्राभिभूत युग में करने
मानवजीवन का परित्राण ;
वह छायाबिम्बों में खोया,
पाने व्यक्तित्व प्रकाशवान,
फिर रक्तमांस प्रतिमाओं में
फूँकने सत्य से अमर प्राण !

संसार छोड़ कर ग्रहण किया
नरजीवन का परमार्थसार,
अपवाद बने, मानवता के
ध्रुव नियमों का करने प्रचार ;
हो सार्वजनिकता जयी, अजित !
तुमने निजत्व निज दिया हार,
लौकिकता को जीवित रखने
तुम हुए अलौकिक, हे उदार !

मंगलशशिलोलुप मानव थे
विस्मित ब्रह्मांडपरिधि विलोक
तुम केन्द्र खोजने आए तब
सब में व्यापक, गत रागशोक,
पशुपक्षीपुष्पों से प्रेरित
उद्दाम-काम जन-क्रांति रोक,
जीवनइच्छा को आत्मा के
वश में रख, शासित किए लोक !

था व्याप्त दिशावधि ध्वांत : भ्रांत
इतिहास विश्वउद्भव प्रमाण,
बहु हेतु, बुद्धि, जड़ वस्तुवाद
मानवसंस्कृति के बने प्राण ;
थे राष्ट्र, अर्थ, जन, साम्यवाद
छल सभ्यजगत के शिष्टमान,
भू पर रहते थे मनुज नहीं,
बहु रूढ़िरीति प्रेतों समान—

तुम विश्वमंच पर हुए उदित
बन जगजीवन के सूत्रधार,
पट पर पट उठा दिए मन से,
कर नरचरित्र का नवोद्धार ;
आत्मा को विषयाधार बना,
दिशिपल के दृश्यों को सँवार,
गागा—एकोहं बहु स्याम,
हर लिए भेद, भवभीति-भार !

एकता इष्ट निर्देश किया,
जग खोज रहा था जब समता
अंतरशासन चिर रामराज्य,
औ' बाह्य, आत्महन अक्षमता,
हों कर्मनिरत जन, रागविरत;
रति-विरति-व्यतिक्रम भ्रम-ममता,
प्रतिक्रिया-क्रिया साधन-अवयव,
है सत्य सिद्ध, गति-यति-क्षमता!

ये राज्य, प्रजा, जन, साम्य-तंत्र
शासन-चालन के कृतक यान,
मानस, मानुषी, विकास-शास्त्र
हैं तुलनात्मक, सापेक्ष ज्ञान;
भौतिक विज्ञानों की प्रसूति
जीवन-उपकरण- चयन-प्रधान,
मथ सूक्ष्म-स्थूल जग, बोले तुम--
मानव मानवता का विधान!

बापू के प्रति

साम्राज्यवाद था कंस, बंदिनी
मानवता पशुबलाक्रांत,
श्रृंखला दासता, प्रहरी बहु
निर्मम शासन-पद शक्ति-भ्रांत,
कारागृह में दे दिव्य जन्म
मानवआत्मा को मुक्त, कांत,
जन-शोषण की बढ़ती यमुना
तुमने की नत, पद-प्रणत, शांत !

कारा थी संस्कृति विगत, भित्ति
बहु धर्म-जाति-गत रूप-नाम,
बंदी जगजीवन, भू विभक्त,
विज्ञानमूढ़ जन प्रकृति-काम ;
आए, तुम मुक्त पुरुष, कहने—
मिथ्या जड़बंधन, सत्य राम,
नानृतं जयति सत्यं, मा भैः,
जय ज्ञानज्योति, तुमको प्रणाम !

(एप्रिल '३६)

युगांतर

श्री कृष्णानंद जी पांडे

के कर कमलों में—

	विषय			पृष्ठ

विषय ... पृष्ठ

श्रद्धा के फूल

१

अंतर्धान हुआ फिर देव विचर धरती पर,
स्वर्ग रुधिर से मर्त्यलोक की रज को रँगकर!
टूट गया तारा, अंतिम आभा का दे वर,
जीर्ण जाति मन के खँडहर का अंधकार हर!

अंतर्मुख हो गई चेतना दिव्य अनामय
मानस लहरों पर शतदल सी हँस ज्योतिर्मय!
मनुजों में मिल गया आज मनुजों का मानव
चिर पुराण को बना आत्मबल से चिर अभिनव

आओ, हम उसको श्रद्धांजलि दें देवोचित,
जीवन सुंदरता का घट मृत को कर अर्पित;
मंगलप्रद हो देवमृत्यु यह हृदय विदारक
नव भारत हो बापू का चिर जीवित स्मारक!

बापू की चेतना बने पिक का नव कूजन,
बापू की चेतना वसंत बखेरे नूतन!

२

हाय, हिमालय ही पल में हो गया तिरोहित
ज्योतिर्मय जल से जन धरणी को कर प्लावित !
हाँ, हिमाद्रि ही तो उठ गया धरा से निश्चित
रजत वाष्प सा अंतर्नभ में हो अंतर्हित

आत्मा का वह शिखर, चेतना में लय क्षण में,
व्याप्त हो गया सूक्ष्म चाँदनी सा जन मन में !
मानवता का मेरु, रजत किरणों से मंडित,
अभी अभी चलता था जो जग को कर विस्मित,
लुप्त हो गया : लोक चेतना के क्षत पट पर
अपनी स्वर्गिक स्मृति की शाश्वत छाप छोड़कर

आओ, उसकी अक्षय स्मृति को नींव बनाएँ,
उसपर संस्कृति का लोकोत्तर भवन उठाएँ !
स्वर्ण शुभ्र धर सत्य कलश स्वर्गोच्च शिखर पर
विश्व प्रेम में खोल अहिंसा के गवाक्ष वर !

३

आज प्रार्थना से करते तृण तरु भर मर्मर,
सिमटा रहा चपल कूलों को निस्तल सागर !
नम्र नीलिमा में नीरव, नभ करता चिंतन,
श्वास रोक कर ध्यान मग्न सा हुआ समीरण !

क्या क्षण भंगुर तन के हो जाने से ओझल
सूनेपन में समा गया यह सारा भूतल ?
नाम रूप की सीमाओं से मोह मुक्त मन
या अरूप की ओर बढ़ाता स्वप्न के चरण ?

ज्ञात नहीं : पर द्रवीभूत हो दुख का बादल
बरस रहा अब नव्य चेतना में हिम उज्वल,
बापू के आशीर्वाद सा ही : अंतस्तल
सहसा है भर गया सौम्य आभा से शीतल !

खादी के अकलुष जीवन सौंदर्य पर सरल
भावी के सतरँग सपने कंप उठते झलमल !

४

हाय, आँसुओं के आँचल से ढँक नत आनन
तू विषाद की शिला बन गई आज अचेतन,
ओ गांधी की धरे, नहीं क्या तू अकाय-व्रण ?
कौन शस्त्र से भेद सका तेरा अछेद्य तन ?

तू अमरों की जनी, मर्त्य भू में भी आकर
रही स्वर्ग से परिणीता, तप पूत निरंतर !
मंगल कलशों-से तेरे वक्षोजों में घन
लहराता नित रहा चेतना का चिर यौवन !
कीर्ति स्तंभ-से उठ तेरे कर अंबर पट पर
अंकित करते रहे अमिट ज्योतिर्मय अक्षर !

5, ओ गीता के अक्षय यौवन की प्रतिमा,
मा सकी कब धरा स्वर्ग में तेरी महिमा !
व, और भी उच्च हुआ अब भाल हिम शिखर
धि रहा तेरे अंचल में भू को सागर !

५

हिम किरीटिनी, मौन आज तुम शीष झुकाए
सौ वसंत हों कोमल अंगों पर कुम्हलाए!
वह जो गौरव शृंग धरा का था स्वर्गोज्वल,
टूट गया वह?—हुआ अमरता में निज ओझल!
लो, जीवन सौंदर्य ज्वार पर आता गाँधी,
उसने फिर जन सागर में आभा पुल बाँधी!

खोलो, मा, फिर बादल सी निज कबरी श्यामल,
जन मन के शिखरों पर चमकें विद्युत के पल!
हृदय हार सुरधुनी तुम्हारी जीवन चंचल,
स्वर्ण श्रोणि पर शीष धरे सोया विंध्याचल!
गज रदनों से शुभ्र तुम्हारे जघनों में घन
प्राणों का उन्मादन जीवन करता नर्तन!

तुम अनंत यौवना धरा हो, स्वर्गाकांक्षित,
जन को जीवन शोभा दो: भू हो मनुजोचित!

६

देख रहे क्या देव, खड़े स्वर्गोच्च शिखर पर
लहराता नव भारत का जन जीवन सागर ?
द्रवित हो रहा जाति मनस का अंधकार घन
नव मनुष्यता के प्रभात में स्वर्णिम चेतन !

मध्ययुगों का घृणित दाय हो रहा पराजित
जाति द्वेष, विश्वास अंध, औदास्य अपरिमित !
सामाजिकता के प्रति जन हो रहे जागरित
अति वैयक्तिकता में खोए, मुंड विभाजित !

देव, तुम्हारी पुण्य स्मृति बन ज्योति जागरण
नव्य राष्ट्र का आज कर रही लौह संगठन !
नव जीवन का रुधिर हृदय में भरता स्पंदन,
नव्य चेतना के स्वप्नों से विस्मित लोचन !

भारत की नारी ऊषा सी आज अगुंठित,
भारत की मानवता नव आभा से मंडित !

देख रहा हूँ, शुभ्र चाँदनी का सा निर्झर
गांधी युग अवतरित हो रहा इस धरती पर!
विगत युगों के तोरण, गुंबद, मीनारों पर
नव प्रकाश की शोभा रेखा का जादू भर!

संजीवन पा जाग उठा फिर राष्ट्र का मरण,
छायाएँ सी आज चल रहीं भू पर चेतन,—
जन मन में जग, दीप शिखा के पग धर नूतन,
भावी के नव स्वप्न धरा पर करते विचरण!

सत्य अहिंसा बन अंतर्राष्ट्रीय जागरण
मानवीय स्पर्शों से भरते हैं भू के व्रण!
झुका तड़ित-अणु के अश्वों को, कर आरोहण,
नव मानवता करती गांधी का जय घोषण!

मानव के अंतरतम शुभ्र तुषार के शिखर
नव्य चेतना मंडित, स्वर्णिम उठे हैं निखर!

८

देव पुत्र था निश्चय वह जन मोहन मोहन,
सत्य चरण धर जो पवित्र कर गया धरा कण !
विचरण करते थे उसके सँग विविध युग वरद
राम, कृष्ण, चैतन्य, मसीहा, बुद्ध, मुहम्मद !
उसका जीवन मुक्त रहस्य कला का प्रांगण,
उसका निश्छल हास्य स्वर्ग का था वातायन !
उसके उच्चादर्शों से दीपित अब जन मन,
उसका जीवन स्वप्न राष्ट्र का बना जागरण !

विश्व सभ्यता की कृत्रिमता से हो पीड़ित
वह जीवन सारल्य कर गया जन में जागृत !
यांत्रिकता के विषम भार से जर्जर भू पर
मानव का सौंदर्य प्रतिष्ठित कर देवोत्तर !

आत्म दान से लोक सत्य को दे नव जीवन
नव संस्कृति की शिला रख गया भू पर चेतन !

९

देव, अवतरण करो धरा-मन में क्षण, अनुक्षण
नव भारत के नव जीवन वन, नव मानवपन !
जाति ऐक्य के ध्रुव प्रतीक, जग वंद्य महात्मन्,
हिंदू मुस्लिम वंदे तुम्हारे युगल चरण वन !

भावी कहती कानों में भर गोपन मर्मर,—
हिंदू मुस्लिम नहीं रहेंगे भारत के नर !
मानव होंगे वे, नव मानवता से मंडित,
मध्य युगों की कारा से भू पर चल विस्तृत !

जाति द्वेष से मुक्त, मनुजता के प्रति जीवित,
विकसित होंगे वे, उच्चादर्शों से प्रेरित !
भू जीवन निर्माण करेंगे, शिक्षित जन मत
बापू में हो युक्त, युक्त हो जग से युगपत् !

नव युग के चेतना ज्वार में कर अवगाहन
नव मन, नव जीवन-सौंदर्य करेंगे धारण !

१०

दर्प दीप्त मनु पुत्र, देव, कहता तुमको युग मानव,
नहीं जानता वह, यह मानव मन का आत्म पराभव !
नहीं जानता, मन का युग मानव आत्मा का शैशव,
नहीं जानता मनु का सुत निज अंतर्नभ का वैभव !

जिन स्वर्गिक शिखरों पर करते रहे देव नित विचरण;
जिस शाश्वत सुख के प्रकाश से भरते रहे दिशा क्षण;
आज अपरिचित उससे जन, ओढ़े प्राणों का जीवन,
मन की लघु डगरों में भटके, तन को किए समर्पण !

वे मिट्टी-से आज दबाए मुँह में ममता के तृण
नहीं जानते वे, रज की काया पर देवों का ऋण !
ज्योति चिह्न जो छोड़ गए जन मन में बुद्ध महात्मन्
वे मानव की भावी के उज्वल पथ दर्शक नूतन !

मनोयंत्र कर रहा चेतना का नव जीवन ग्रंथित,
लोकोत्तर के संग देवोत्तर मनुज हो रहा विकसित !

११

ाथम अहिंसक मानव बन तुम आए हिंस्र धरा पर,
ानुज बुद्धि को मनुज हृदय के स्पर्शों से संस्कृत कर
नेवल प्रेम को भाव गगन से निर्मम धरती पर धर
ान जीवन के बाहु पाश में बाँध गए तुम दृढ़तर !
ेष घृणा के कटु प्रहार सह, करुणा दे प्रेमोत्तर
ानुज अहं के गत विधान को बदल गए, हिंसा हर !

घृणा द्वेष मानव उर के संस्कार नहीं हैं मौलिक,
वे स्थितियों की सीमाएं हैं: जन होंगे भौगोलिक !
आत्मा का संचरण प्रेम होगा जन मन के अभिमुख,
हृदय ज्योति से मंडित होगा हिंसा स्पर्धा का मुख !

लोक अभीप्सा के प्रतीक, नव स्वर्ग मर्त्य के परिणय,
अग्रदूत बन भव्य युग पुरुष के आए तुम निश्चय !
ईश्वर को दे रहा जन्म युग मानव का संघर्षण,
मनुज प्रेम के ईश्वर, तुम यह सत्य कर गए घोषण !

१२

(गुरुदेव के प्रति)

सूर्य किरण सतरंगों की श्री करतीं वर्षण
सौ रंगों का सम्मोहन कर गए तुम सृजन,—
रत्नच्छाया सा, रहस्य शोभा से गुंफित,
स्वर्गोन्मुख सौंदर्य प्रेम आनंद से श्वसित

स्वप्नों का चंद्रातप तुम बुन गए, कलाधर,
विहँस कल्पना नभ से, भाव-जलद-पर रँगकर
रहस प्रेरणा की तारक ज्वाला से स्पंदित
विश्व चेतना सागर को कर रंग-ज्वार स्मित!

प्राण शक्ति के तड़ित मेघ-से मंद्र भर स्तनित
जन भू को कर गए अग्नि बीजों से गर्भित,
तुम अखंड रस पावस का जीवन प्लावन भर
जगती को कर अजर हृदय यौवन से उर्वर!

आज स्वप्न पथ से आते तुम मौन धर चरण,
बापू के गुरुदेव, देखने राष्ट्र जागरण!

१२

राजकीय गौरव से जाता आज तुम्हारा अस्थि फूल रथ
श्रद्धा मौन असंख्य दृगों से अंतिम दर्शन करता जन पथ !
हृदय स्तब्ध रह जाता क्षण भर, सागर को पी गया ताम्र घट ?
घट घट में तुम समा गए, कहता विवेक फिर, हटा तिमिर पट !
बाँध रही गीले आँचल में गंगा पावन फूल ससंभ्रम,
भूत भूत में मिलें, प्रकृति क्रम : रहे तुम्हारे सँग न देह भ्रम !

अमर तुम्हारी आत्मा, चलती कोटि चरण धर जन में नूतन,
कोटि नयन आभा तोरण बन, मन ही मन करते अभिनंदन !
भूल क्षणिक भस्मांत स्वप्न यह, कोटि कोटि उर करते अनुभव
बापू नित्य रहेंगे जीवित भारत के जीवन में अभिनव !

आत्मज होते महापुरुष : वे अगणित तन कर लेते धारण,
मृत्यु द्वार कर पार, पुनर्जीवित हो, भू पर करते विचरण !
राजोचित सम्मान तुम्हें देता, युग सारथि, जन मन का रथ,
नव आत्मा बन उसे चलाओ, ज्योतित हो भावी जीवन पथ !

१४

लो, झरता रक्त प्रकाश आज नीले बादल के अंचल से,
रँग रँग के उड़ते सूक्ष्म वाष्प-मानस के रश्मि ज्वलित जल से !
प्राणों के सिंधु-हरित पट से लिपटी हँस सोने की ज्वाला,
स्वप्नों की सुषमा में सहसा निखरा अवचेतन अँधियाला !

आभा-रेखाओं के उठते गृह, धाम, अट्ट, नवयुग तोरण,
रुपहले परों की अप्सरियां करतीं स्मित भाव सुमन वर्षण !
दिव्यात्मा पहुँची स्वर्गलोक, कर काल अश्व पर आरोहण,
अंतर्मन का चैतन्य जगत करता बापू का अभिनंदन !

नव संस्कृति की चेतना शिला का न्यास हुआ अब भू-मन में,
नव लोक-सत्य का विश्व-संचरण हुआ प्रतिष्ठित जीवन में !
गत जाति धर्म के भेद हुए भावी मानवता में चिर लय,
विद्वेष घृणा का सामूहिक नव हुआ अहिंसा से परिचय !

तुम धन्य युगों के हिंसक पशु को बना गए मानव विकसित,
तुम शुभ्र पुरुष बन आए, करने स्वर्ण पुरुष का पथ विस्तृत !

१५

बारबार अंतिम प्रणाम करता तुमको मन
हे भारत की आत्मा, तुम कब थे भंगुर तन?
व्याप्त हो गए जन मन में तुग आज महात्मन्
नव प्रकाश बन, आलोकित कर नव जग जीवन!
पार कर चुके थे निश्चय तुम जन्म औ' निधन
इसीलिए बन सके आज तुम दिव्य जागरण।
श्रद्धानत अंतिम प्रणाम करता तुमको मन
हे भारत की आत्मा, नव जीवन के जीवन!

१६

जय हे,

जय राष्ट्रपिता, जय जय हे

देव विनय, अविजेय आत्मबल,
शुभ्र वसन, तन कांति तपोज्वल,
हृदय क्षमा का सागर निस्तल,
शांत तेज नव सूर्योदय, जय जय हे

नव प्रभात लाए तुम जन प्रांगण में,
जीवन के अरुणोदय से हँस मन में,
अपराजित तुम रहे, अहिंसक, रण में,
सत्य-शिखर के पांथ अभय, जय जय हे !

पशुबल का हर अंधकार जन दुस्तर,
मनुष्यता का मुख कर संस्कृत, सुंदर,
विचरे स्वर्ग शिखा ले तुम धरती पर,
मनुजों के मानव, चिर मंगलमय हे !

हिन्दू मुस्लिम युगल बाहुबल,
पद तल पर नत जीवन का छल,
फहर तिरंग चक्रदल प्रतिपल
हरता जन मन भय संशय, जय जय हे !

भारत गात

(१)

जय जन भारत, जय आभा रत
जय जन राष्ट्र विधाता !

गौरव भाल हिमाचल उज्वल
हृदय हार गंगा जल,
विन्ध्य श्रोणिवत्, सिन्धु चरण नत
महिमा शतमुख गाता !

आम्र बौर, तालीवन, मलय पवन, पिक कूजन
जन मन नित हर्षाता !
अरुणोदय प्रभ, ज्योति छत्र नभ
ऊपर नील सुहाता
य हे, जय हे, जय हे, जय जय जय जन हे !

हरे खेत लहरे निर्मल सरिता सर
जीवन शोभा से जन धरणी उर्वर
कोटि हस्त नित विश्व कर्म हित तत्पर
बढ़ते अगणित चरण अडिग ध्रुव पथ पर !

प्रथम सभ्यता संस्कृति ज्ञाता, साम ध्वनित गुण गाथा,
जय नव मानवता निर्माता,
सत्य अहिंसा दाता !

सुनो, प्रयाण के विषाण तूरि भेरि बज उठे,
घनन, पणव पटह प्रचंड घोष कर गरज उठे,
विशाल सत्य सैन्य, वीर युद्ध वेश सज जुटे,
झनन, कराल अस्त्र-शस्त्र युक्त क्रुद्ध भुज उठे !
शक्ति स्वरूप, अमित बलधारी, वंदित भारतमाता,
धर्म चक्र रक्षित तिरंग ध्वज उठ अविजित फहराता !

मंगल वादन जन मन स्पंदन
देव द्वार भू प्रांगण,
मुक्त कंठ करते जय कीर्तन
निर्भय मस्तक वंदन !

जय जाग्रत, ज्ञानोन्नत, जय शिव सुंदर शाश्वत,
जय जन भव भय त्राता !
धरा स्वर्गवत्, श्रद्धा से नत,
जन मत शीर्ष उठाता !
जय हे, जय हे, जय हे, जय जय जय जय हे !

जय जन भारत, जन मन अभिमत,
जन गण तंत्र विधाता !

गौरव भाल हिमाद्रि तपोज्वल,
हृदय हार गंगा जल,
कटि विन्ध्याचल, सिन्धु चरण तल
महिमा शाश्वत गाता !

हरे खेत लहरें नद निर्झर
जीवन शोभा से भू उर्वर,
विश्व कर्म रत कोटि बाहु कर
अगणित पद ध्रुव पथ पर !

प्रथम सभ्यता ज्ञाता, साम ध्वनित गुण गाथा,
जय नव मानवता निर्माता
सत्य अहिंसा दाता !
जय हे जय हे जय हे, जय भव भय त्राता !

प्रयाण तूर शृंग भेरि बज उठे
घनन घनन पटह विकट गरज उठे,
प्रबुद्ध वीर युद्ध वेश सज जुटे
विशाल सत्य सैन्य, लौह भुज उठे !
शक्ति स्वरूपिणि, बहु बल धारिणि, वंदित भारत माता !
धर्म चक्र रक्षित तिरंग ध्वज अपराजित फहराता !
जय हे जय हे जय हे, शांति अधिष्ठाता !

जय जन भारत, जन मन अभिमत
जन गण तंत्र विधाता !
गौरव भाल हिमालय उज्वल
हृदय हार गंगा जल,
कटि विन्ध्याचल, सिन्धु चरण तल
महिमा शाश्वत गाता !

हरे खेत लहरे नद निर्भर
जीवन शोभा उर्वर,
विश्व कर्म रत कोटि बाहु कर
अगणित पद ध्रुव पथ पर !

प्रथम सभ्यता ज्ञाता, साम ध्वनित गुण गाथा,
जय नव मानवता निर्माता
सत्य अहिंसा दाता !
जय हे जय हे जय हे, शांति अधिष्ठाता !

प्रयाण तूर्य बज उठे
पटह तुमुल गरज उठे
विशाल सत्य सैन्य, लौह भुज उठे !
शक्ति स्वरूपिणि बहुबल धारिणि वंदित भारत माता !
धर्म चक्र रक्षित तिरंग ध्वज अपराजित फहराता !
जय हे जय हे जय हे, अभय, अजय, त्राता !

स्वतंत्रता दिवस

विजय ध्वजा फहराओ,
बंदनवार बंधाओ,
आओ हे, स्वातंत्र्य मनाओ !

आज तिरंगे से रे अंबर
रंग तरंगित,
हर्ष ध्वनि से मुग्ध समीरण
चंचल, पुलकित;

जन समुद्र उद्वेलित,
हरित दिशाएं हर्षित,
जन धरणी का अंचल
स्वर्णिम श्यामल कंपित !

जय निनाद कर गाओ,
जन गण सैन्य सजाओ,
आओ हे, स्वातंत्र्य मनाओ !

यह विराट् रे देश,
विशाल जहाँ जन समुदय,
यहाँ हुआ था प्रथम
सभ्यता का स्वर्णोदय ;

थ

यहीं आत्म उन्मेष हुआ
मानव को निश्चय ;
मृत्यु भीत नर बना अमर,
भू जीवन निर्भय !

गौरव भाल उठाओ,
मंगल वाद्य बजाओ,
आओ हे, स्वातंत्र्य मनाओ !

रुद्ध हृदय के द्वार, वीर,
खोलो झन झन झन,
युग युग का अवसाद बहाओ
आज मुक्ति क्षण ;

नव जीवन का रण प्रांगण हो
जन जन का मन,
अमरों से लो छीन पुनः
अपना खोया धन !

स्वर्ग रुधिर में न्हाओ,
वाद विवाद डुबाओ
आओ हे, स्वातंत्र्य मनाओ !

स्वाधीन दिवस

विजय मनाओ, गाओ जय,
स्वाधीन दिवस जय, कंठ मिलाओ हे !

रंग ज्वाल फूलों की लेकर,
नव आशा उल्लास भर अमर,
इंद्रधनुष फहराओ, जय,
भारत मा की जय, गगन गुँजाओ हे !

आज रक्त में नाच रही ज्वाला,
आज जनों में जीवन का उजियाला,
हुआ सुनहला अब मन का अँधियाला,
जय बापू की जय, भेद भुलाओ हे !

उठो, पाँति में खड़े युवक गण,
करो तिरंगे का अभिवादन
यह जीवन रण का प्रांगण, जय,
जन भारत जय, चरण बढ़ाओ हे !

जयगान

आओ हे, आओ,

सब मिल कर

जन भारत जय गाओ!

बंदन वार बनें स्मित लोचन,

जन मंगल का घट हो पूरन,

आज रचें हम नवयुग तोरण,

भुज प्राचीर उठाओ!

अब कैसा भय, कैसा संशय,

देखो, हँसता नव अरुणोदय,

आज मनाने चले हम विजय,

गृह पथ नगर सजाओ!

मिटी युगों की ग्लानि निराशा,

जगी नव्य आशा अभिलाषा,

जागें युक्त कर्म मन भाषा,

युग प्रभात नव लाओ!

मृत्यु नहीं रे देह त्यागना,

मृत्यु समर के बीच भागना,

मृत्यु समय पर नहीं जागना,

राष्ट्र हेतु बलि जाओ!

स्वाधीन चेतना

जागो हे स्वाधीन चेतने,
जन मन शौर्य जगाओ,
भारत की आलोक शिखे,
नव युग के चरण बढ़ाओ!

तेरे उन्मद पद चालन से
झरें मृत्यु भय संशय,
अंग भंगि से जीवन की
शोभा फूटे मंगलमय!
हाव भाव से नव आशा,
नव अभिलाषा बरसाओ!

तेरे श्वासों में ज्वाला हो,
अधरों में मधु मादन,
भ्रू विलास बलिदान,
स्निग्ध चितवन हो नव संजीवन!
इंगित पर जन शीष झुकें,
जन शीष उठें, तुम आओ!

तेरी हिंसा रहे अहिंसक
जग जीवन के रण में,
बजे सत्य की भेरी
दुविधा मौन चीर जन मन में !
मर्त्यों की दुर्बलता हर,
जीवन अवसाद मिटाओ !

रूढ़ि रीति के मुंड हृदय में,
ज्योति खड्ग हो कर में,
पद तल पर नत मृत्यु भीति हो,
जीवन रुधिर अधर में !
रक्त पात्र से फिर नव चेतन
अरुण ज्वाल छलकाओ !

पाप पुण्य परिभाषा,
मिथ्या स्वर्ग मुक्ति आशा हर,
आत्मा का अमरत्व बता
जीवन के मन के भीतर,
हे युग युग संभवे, विश्व को
नव संदेश सुनाओ !

देख रहा मैं काल दंश,——
कट रहे युगों के बंधन,
उर उर में मच रहा महाभारत,
——यह विश्व विवर्तन!
कोटि कंठ मिल कर
वंदे मातरम् निनाद गुँजाओ

काँप रहे युग युग के भूधर,
डुबा रहा तट सागर,
गरज रहा जन मन का नभ
फिर धूमिल वाष्पों से भर!

विद्युत् लासिनि, जगो,
इंद्रधनु प्रभ तिरंग फहराओ!
भारत की स्वाधीन चेतने,
जन मन ज्योति जगाओ!

उद्बोधन

तुम विनम्र रह
भीरु बन गए, कायर,
जीवन प्रांगण में !

यह सौजन्य नहीं रे दुर्बल,
आत्म वंचना यह, मन का छल,
मौन मूक रह
बने नगण्य करुणतर
तुम लोक नयन में !

यह भू जीवन का पथ दुस्तर
ज्योति तमस का क्षेत्र निरंतर,
तुम त्यागी रह
रिक्त बन गए, पामर,
प्रभुता के क्षण में !

कुछ आदर्श व्यक्ति के पोषक,
कुछ सामूहिक हित के द्योतक,
तुम उदार रह
व्यर्थ लुटे सब खोकर
स्वार्थों के रण में !

युगांतर

सत्य नहीं रे मात्र आत्म-पर,
व्यक्ति विश्व के सँग है ईश्वर,
तुम दयार्द्र रह
वने कलंकित, सुंदर,
पर दुख भंजन में

तुम्हें चाहिए प्राणों का पण,
तुम्हें सत्य के प्रति आकर्षण
तुम्हें ईश के प्रति आत्मार्पण,
विद्रोही रह
करो कलुष से संगर,
निर्लिप्त स्व-मन में!

जागरण

आओ, जन स्वतंत्र भारत को
जीवन उर्वर भूमि बनावें
उसके अंतः स्मित आनन से
तम का गुंठन भार उठावें !

अह, इस सोने की धरती के
खुले आज सदियों के बंधन,
मुक्त हुई चेतना धरा की,
युक्त बनें अब भू के जनगण !

अगणित जन लहरों से मुखरित
उमड़ रहा जग जीवन सागर,
इसके छोर हीन पुलिनों में
आज डुबाएँ युग के अंतर !

अश्रु स्वेद से ही सींचेंगे
जन क्या जीवन की हरियाली ?
संस्कृति के मुकुलित स्वप्नों से
क्या न भरेंगे उर की डाली ?

क्या इस सीमित धरती ही में
समा सकेगा मानव का मन,
मौन स्वर्ग शृंगों के ऊपर
कौन करेगा तब आरोहण ?

धरती के ही कर्दम में सन
नहीं फूलता फलता जीवन,
उसे चाहिए मुक्त समीण,
उसे स्वर्ग किरणों के चुंवन !

समाधान भू के जीवन का
पर नहीं,—वृथा संघर्षण,
भू मन से ऊपर उठ कर हम
बना सकेंगे भू को शोभन !

मानवता निर्माण करें जन
चरण मात्र हों जिसके भू पर,
हृदय स्वर्ग में हो लय जिसका,
मन हो स्वर्ग क्षितिज से ऊपर

यांत्रिकता के विपम भार से
आज डूबने को जन धरणी,
महा प्रलय के सागर में क्या
भारत वन न सकेगा तरणी ?

अंधकार के महा सिन्धु में
डूबी रह न सकेगी धरती,
किरणें जिसमें अग्नि बीज बो
यौवन की हरियाली भरतीं!

मिट्टी से ही सटे रहेंगे
क्या भारत भू के भी जन गण,
क्या न चेतना शस्य करेंगे
वे समस्त पृथ्वी पर रोपण?

आज रक्त लथपथ मानव तन,
द्वेष कलह से मूर्छित जन मन,
भारत, निज अंतर्प्रकाश का
पुनः पिलाओ नव संजीवन

भूत तमस में खोए जग को
फिर अंतर्पथ आज दिखाओ
मानवता के हृदय पद्म को
पंक मुक्त कर ऊर्ध्व उठाओ!

दीप लोक

आज सहस्रों नयन खोल कर
सोच रहा ज्यों अंधकार घन,—
कैसे अंतर से आलोकित
होगा जग जीवन का प्रांगण!

कैसे अंबर की अनंत स्मिति
अंकित होगी भू के मुख पर,
स्वर्ग शिखा से होंगे शोभित
कब ये मृन्मय दीपक सुंदर

एक ज्योति की ऊर्ध्वग लौ से
कब सौ सौ उर हो कर दीपित
धरती के जड़ रज के तम को
आभा से कर देंगे विस्मित!

गृह तोरण गुंबद मीनारें
दीपों की रेखा छवि से स्मित
हँसती,—मानव उर का मंदिर
कब से भीतर से तमसावृत!

असंगठित जग जीवन का तम
आज चतुर्दिक् रहा ज्यों बिखर,
अँधियाले का दुर्ग बना दृढ़
जीर्ण जातिगत मन का खँडहर!

शत सहस्र दीपों से भी, अह,
बन न सकेगा जन पथ विस्तृत,
दीप शिखा कहती सिर धुन कर
जब तक होगा हृदय न ज्योतित!

नव जीवन के ज्योति चरण धर
कब भू पर विचरेगा मानव,—
ताराओं के नभ के नीचे
दीपों का नभ कहता नीरव!

इस धरती के रज के तम में
अग्नि बीज रे दबे चिरंतन
फूटें ज्योति प्ररोहों में वे
पा जागृति का लोक समीरण!

कँपती स्वप्न शिखाओं में जग
हो मानव चेतना पल्लवित,
नव जीवन शोभा से जगमग
धरणी का प्रांगण हो दीपित!

दीप श्री

आभा के धब्बों से भर
भू अँधियाली का अंचल
हँसती किरणों की दीपा
जन पथ में बरसा मंगल !

वह आई, तम के पट मे
निखरीं अवयव रेखा छन
नव स्वर्ण शुभ्र शोभा का
कँपता कृश दीप शिखा तन !

अब नगर हाट डगरों के
शोभित गवाक्ष गृह तोरण,
रुपहली ज्योति कलियों मे
मुकुलित छत गुंबद प्रांगण !

यह भू जीवन की शोभा
जन आकांक्षा में दीपित
धरती के तम में बुनती
तारों के स्वप्न अंतद्रित !

फिर जगी चेतना भू की
निष्कंप स्नेह स्मित चितवन,
दौड़ी मृन्मय दीपों में
स्वप्नों के पग धर नूतन !

यह रे जग के आँगन में
अंतर आभा का मधुवन,
जागा जन मन डालों में
नव ज्वाला पल्लव जीवन !

मिट्टी के खिलौने

तुमने अंतर्नभ का वैभव
मिट्टी में बाँध दिया जीवित,
तुम रूपकार, उर का प्रकाश
रज के तम में करते दीपित !

ये भाव चिरंतन जन मन के
जो मूक खिलौनों में मूर्तित,
ये मानवीय वर्ण श्रवण नयन,
नासा मुख, अंगों से शोभित !

मस्तक पर स्वर्ण रजत किरीट,
कर में मुरली, माला, धनुशर,
पट नील पीत पहने तन पर
युग युग से ये मन लेते हर !

गणपति हैं, दशभुज दुर्गा हैं,
गौरी गंगा युत शिव शंकर,
वे गरुड़ पीठ पर वरद विष्णु
जिनके सँग लक्ष्मी जी सुंदर !

ये राम कृष्ण, राधा सीता,
गांधी जी, बुद्ध, जवाहर हैं,—
हम मात्र मूर्तियाँ हैं बाहर
चेतन प्रकाश कण भीतर हैं !

तुम कैसे रह सकते केवल
अंतर प्रकाश ही में सीमित
तुम मूर्तिमान बनते जन में
क्षर रूप धन्य होता निश्चित !

ये प्रतिमाएं चलती फिरतीं
जन के मन में धर स्वप्न चरण,
तुम युग युग में धर रूप नवल
मानव मन को करते धारण !

कवीन्द्र रवीन्द्र के प्रति

श्रद्धांजलि स्वीकार करें गुरुदेव शिष्य की
आज श्राद्ध वासर के वाष्प नयन अवसर पर
पुण्य स्मृति से मेघ सजल लोचन बरसाते
स्नेह द्रवित आनंद अश्रु पावन चरणों पर,——
मौन, स्वप्न पथ से बढ़ते जो चरण हृदय में !

और आज क्या श्रद्धांजलि दूँ, इस धरती के
जीवन के रण क्षेत्र पर खड़ा ?——जड़ भूतों की
निद्रा से चिर तंद्रिल !——जो जीवन विकास के
विमुख, जागरण के अवरोधी, अधोमुखी हैं !

नहीं चाहता भू जीवन के अंधकार को
पुनः आप के पास भेजना : इन वर्षों में
अधिक नहीं कुछ बदल सका धरती का जीवन,
बल्कि, तीसरे विश्व युद्ध के लिए धरा के
राष्ट्र आज सन्नद्ध दीखते : अणु विस्फोटों,
रुज् किटाणुओं, गरल वृष्टि से——वसुंधरा पर
महा प्रलय, अंतिम विनाश लाने को उद्यत ! !
हरित भरित जन वसुधा पर, जो सागर जल के

अनिल विलोलित श्लथ अंचल को वक्षःस्थल से
अहरह चिपका, नाच रही स्मित सूर्यातप में,
नृत्य परा अप्सरा सी चपल, ज्योति ग्रहों से
परिवेष्टित;—अनभिज्ञ हाय, भावी संकट से!!

भौतिकता लोहे के निर्मम चरण बढ़ा कर
रौंद रही मानव आत्मा को, जो यंत्रों के
विकट अस्थि पंजर में अंतिम साँस ले रही!
देव, आप का वह अंतर्राष्ट्रीय स्वप्न भी
अभी नहीं साकार हो सका भू पलकों पर,
राष्ट्रों के कटु स्वार्थ विभक्त किए हैं जिसको
वर्ग श्रेणि की दीवारों में: मानवता को
वंदी कर चिर अंध रूढ़ियों की कारा में!

भूल गया मानव निज अंतर्जग का वैभव,—
जीवन का सौन्दर्य, प्रेम, आनंद,—सूक्ष्म से
उतर नहीं पाते जन भू पर! सृजन चेतना
निष्क्रिय हो कर पंगु पड़ी है! धरा स्वर्ग को
स्वप्नप्रभ पंखों से आज नहीं छू पाती!
अंतर्मन के भूमि कंप से ध्वंस भ्रंश हो
अंतर्विश्वासों के, उन्नत आदर्शों के
शिखर सनातन बिखर रहे हैं मर्त्य धूलि पर!

मानव के नयनों से शाश्वत का प्रसन्न मुख
अस्त हो गया: यह वसुंधरा निरानंद है!

एक सुनहली रेखा है काले बादल में!—
आज आपका प्रिय भारत स्वाधीन हो गया,
छूट गई दासता, युगों की लौह शृंखला
टूट गई,—नैराश्य, दैन्य, पीड़न से निर्मित!
छिन्न कर गए आप जिसे थे पहिले ही से
निज वज्र स्वर के प्रहार कर, नव जागृति भर!

देव, आपकी स्वर्ण भूमि स्वाधीन हो गई
बापू यद्यपि नहीं रहे! वह मानवता के
देव शिखर,—अपने शोणित से नव जीवन का
युग प्रभात रँग, लुप्त हो गए!—मुक्त हो गए!
संबोधन करते थे जो गुरुदेव आप को!

रूप मांस थे आप, आत्म पंजर थे वे दृढ़
ऊर्ध्व रीढ़ ही, शांतिनिकेतन की पृथ्वी पर
जिसे चाहते थे दोनों ही स्थापित करना
स्वप्नों से, कर्मों से, जग के रण प्रांगण में
जन मंगल के हित: अह, दोनों चले गए तुम!

मुक्त नहीं हो सका अभी जन भारत का मन,—
मध्य युगों की क्षुद्र विकृतियां शीष उठा कर
नव्य राष्ट्र को बना रहीं निःशक्त, क्षीण हैं!
विविध मतों में, विविध दलों, व्यूहों में बँट कर
देश आज निर्वीर्य, निबल, निस्तेज हो रहा,
घृणित सांप्रदायिक बर्बरता से पीड़ित हो!—
शोणित की नदियाँ बहती अब तपोभूमि में!!

नही झलकता मानव गौरव जन के मुख पर
रुद्ध हृदय है उनका, मन स्वार्थों में सीमित
आत्म त्याग मे हीन, अभी वे नहीं बन सके
महाराष्ट्र के उपादान,—गंभीर, धीर, दृढ़
युग प्रबुद्ध, निर्भीक, वज्र संयुक्त परस्पर!

रहने दूँ यह कटु प्रसंग: मैं नहीं चाहता
फिर विपण्ण भू-मन की छाया पड़े आप पर!—
भारत यदि स्वाधीन हो गया तो निश्चय ही
छूट गई भौतिक परवशता आज धरा की;
उसके प्राणों के स्तर अब चैतन्य हो गए!
पशु बल का खल अहं मिट गया: शांत हो गई
अवचेतन की निम्न वृत्तियाँ घृणा द्वेष की

अंतर्जग में,—बाहर अभी भले सक्रिय हों !
मंद पड़ गई कटु स्पर्धा, अधिकार लालसा;
जीवन की आकांक्षा में संतुलन आ गया,—
दीप्त हो गया तामस का मुख !—
यह भारत की

विश्व विजय है ! जयी हुई इस स्वर्ण धरा की
अमर चेतना ! सफल हुए उसके तप साधन,
अंधकार, मिथ्या, हिंसा के वर्बर स्थल पर
विजयी हुआ प्रकाश,—अहिंसा, आत्म सत्य का !
निश्चय, मानव का भविष्य अव चिर उज्वल है,
असंदिग्ध भू का मंगल,—निर्भय हो जन मन !

विचरण करते होंगे, कवि गुरु, आप अतीन्द्रिय
स्वर्ग लोक में संप्रति,—देवों से भी सुंदर
मानव देव समान, अमर निज यश काया में !
पारिजात मंदार प्रभृति सुमनों की स्वर्गिक
स्वप्निल सौरभ नासा द्वारों से प्रवेश कर
आंदोलित रखती होगी प्राणों को नित नव
भावों से, स्वप्नों से, सुर सौन्दर्य वोध से,—
नंदन का अविरत वसंत ज्यों गुंजित रहता
मुकुल अधर मधुपायी स्वर्णिम भृंग वृंद मे !

अथवा बैठे होंगे आप रहस्य शिखर पर
अमर लोक के, निभृत मौन में ध्यानावस्थित,—
बहती होगी शाश्वत सुंदरता की सरिता
नीचे, स्वर्णिम छाया की सतरँग घाटी में,
कल कल छल छल गाती अनादिता अमरों की

वहाँ विजन में आप दिव्य उन्मेष से स्फुरित
सृष्टि रच रहे होंगे अश्रुत अमर स्वरों की,
सूक्ष्म चेतना की छाया शोभा मे गुंफित,
मौन मग्न हो अतल सृजन आनंद सिन्धु में!

सुर सुंदरियाँ आती होंगी पास आप के
ध्यान भंग करने को, ईर्ष्याकुल निज मन में,
व्यवत, उपेक्षित, विस्मृत अपने को अनुभव कर!
क्षण भर को अपलक रह जाते होंगे लोचन
सुरांगनाओं का सौन्दर्य विलोक अपरिमित!
देह शिखाओं मे अनंत यौवन की आभा
फूट फूट कर विस्मय से भरती होगी मन!
मसृण सुरँग छाया-पट से छन तन की शोभा
झलका करती होगी सौष्ठव रेखाओं में,
स्मिमित शरद घन से कंपित विद्युल्लेखा सी,—
झंकृत कर अंतरतम सत्ता के तारों को!

स्वप्नों के शिखरों से उठ उठ श्वसित पयोधर
टकराते होंगे, आकांक्षा के भुवनों-से,
जिन पर धर कल्पना श्रांत शिर कविर्मनीषी
लेते होंगे क्षण विराम, फिर स्वप्न मग्न हो!
अप्सरियों की पीन श्रोणि, लावण्य चूड़ सी,
घनीभूत कर निज उभार में अमरों का सुख,
मुखरित रहती होगी प्राणों के गुंजन से
त्रिदिव लालसा की कांची से अहरह दोलित!
स्वर्गिक शोभा स्तंभों-से पेशल जघनों पर
कँपती होगी कौश जलद छाया ओझल हो,
जिसमें दिप दिप तड़ित, चकित कर देगी होगी
कवि लोचन, लज्जा लोहित लावण्य राशि मे!

क्षमा करें, गुरुदेव, आप जो भू जीवन के
रसोल्लास के प्रति सदैव जीवित जाग्रत थे,
जो रस सिद्ध कवीश्वर बन विचरे पृथ्वी पर,
आज आप भी वहां ऊबते होंगे निश्चय
अमरों के उस अनाद्यंत आनंद लोक में,—
और, चाहते होंगे फिर से मर्त्य धरा पर
आकर, जीवन श्रम के शोभा सुख को वरना!

एक वार आए थे जहां स्नेहवश प्रेरित
देवों का ले दिव्य रूप, हे कवियों के कवि,
अमरों की वीणा धर कर में भुवन मोहिनी,
भू जीवन सागर को करने रंग उच्छ्वसित;--
गीति छंद की तीव्र मधुर शत झंकारों से
प्राणों का जल लहरा, ज्वार उठा आशा का,
फेनों के शिखरों पर लोक वसा स्वप्नों का
इंदु रश्मि के सम्मोहन से माया दीपित !
आए थे भू रोदन को संगीत बनाने
श्लक्ष्ण मधुर स्वर श्रुतियों के शत आवर्तो से
भावों के छाया पुलिनों को स्वप्न ध्वनित कर !

आए थे तुम जीवन शोभा के शिल्पी बन,
मानव उर की आशाओं, अभिलाषाओं को
सूक्ष्म स्वरों में पुनः ऊर्ध्व मुख झंकृत करने,
निज विराट् प्रतिभा की अद्भुत रहस शक्ति से
स्वर्ग धरा के बीच कल्पना का रंगस्मित
इन्द्रधनुष प्रभ सेतु बाँधने सुर नर मोहन,
अप्सरियों के रणित पदों से मौन गुंजरित !

युग द्रष्टा बन आए आप यहाँ, जन गायक,
देश काल का तमस चीर निज सूक्ष्म दृष्टि से,

पैठे जन जीवन के निस्तल अंतस्तल में
धरती के अवसाद भरे जग गण को देने
उद्बोधन का गान, जागरण मंत्र, मनोबल !
मानव की चेतना रश्मि को अतल गुहा से
बाहर ला, मन में अभिनव आलोक भर गए,
रंग रंग की आभा पंखड़ियों को बिखरा
नव जीवन सौन्दर्य गए बरसा धरती पर
गीतों से, छंदों से, भावों से, स्वप्नों से !

एक बार फिर आओ कवि, इस विधुर देश को
अपनी अमर गिरा से नव आश्वासन देने !
आज और भी लोक प्रतीक्षा यहाँ आप की,
वाणी के वर पुत्र, धरा की महा मृत्यु को
अमर स्वरों से जगा, विश्व को दो जीवन वर !

आओ हे, फिर अपने भारत के मानस से
मध्य युगों का घृणित जाल जंबाल हटा कर
ज्वलित स्वर्ण दर्पण सी उसकी चेतनता को
लाओ फिर जग के समक्ष, जिसमें नव जीवन
नव मानवपन का उज्वल मुख प्रतिबिम्बित हो !
आज धरा के अंधकार में उसका जगमग
कांचन दो फिर से उड़ेल, जीवन प्रभात में ;

रँग दो जन मन के नभ को नव अरुणोदय से,
स्नान करे फिर रक्तोज्वल भू स्वर्ग रुधिर में!

आओ हे कवि, आओ, फिर निज अमृत स्पर्श से
आदर्शों की छायाओं को नव जीवन दो,—
मर्त्य लोक के जड़ प्रांगण में जीवन चेतन
स्वर्ग स्वप्न विचरें, ज्वाला के पग धर नूतन,
नव आशा, अभिलाषा से दीपित दिगंत कर!
आओ तुम, जीवन वसंत के अभिनव पिक बन,
जग चेतना हँसे सांस्कृतिक स्वर्णोदय में!

आज सूक्ष्म दर्शन में जगता मनोनयन में
भारत का आनन हिरण्य स्मित,—जीवन मन के
नभ से पर, आदित्य वर्ण उसकी आत्मा का,—
भूत शिखर के चरम चूड़ सा, शत सूर्योज्वल!
ह्रास नाश से रहित अमर चेतना शक्तियाँ
वह अंतर्हित किए हृदय में, सूक्ष्म, सूक्ष्मतम,
गुह्य, रहस्य, वर्णनातीत,—जग के मंगल हित!

उसके अंतरतम के ज्योतिर्मय शतदल पर
स्वयं खड़े हैं, सत्य चरण धर, अविनाशी प्रभु
तेजोमय, जाज्वल्य, हिरण्य शैल से अद्भुत!

पुरुष पुरातन, पुरुष सनातन, विश्व मोहिनी
निज वंशी के सृजन नाद से जगा अचित् मे
स्वर्गिक पावक के असंख्य चैतन्य लोक स्मित,
बरसा रहे अनंत शून्य में स्वर लय नर्तित
कोटि सूक्ष्म सौन्दर्य, प्रेम, आनन्द के भुवन!—
प्राणों की आशाऽकांक्षाओं मे चिर उर्वर
जीवन मन के स्वर्ग, तृप्ति के सुख में नीरव;
रूप गंध रस स्पर्श शब्द के बिम्ब जगत वह
निज असीम वैभव में अक्षय,—दमक रहे जो
सप्त चेतनाओं के रंग स्तरों में छहरे!
संयम तप के स्वर्ण शुभ्र नीहार मे जड़ित
भारत के चेतना शृंग पर, ध्यान मौन रव,
परम पुरुष वह नृत्य कर रहे, सृजन हर्ष की
विस्मृति में लय!—जिनके अति चेतन प्रकाश मे
शोभा सुषमा की सहस्र दीपित मरीचियाँ,
आभा की आभाएँ, छाया की छायाएँ
दिशा काल में फूट रहीं, शत सुर धनुओं के
रंगों की आलोक क्रांति से दृष्टि चकित कर!
झर झर पड़ते सतत सत्य शिव सुंदर उनसे
महाकाल औ' महा दिशा को चेतनता से
मुग्ध चमत्कृत कर,—रोमांचित दिव्य विभव मे!

आज धरा के भूतों के इस तमस क्षेत्र में
जीवन तृष्णा, प्राण क्षुधा औ' मनोदाह से
क्षुब्ध, दग्ध, जर्जर जन गण चीत्कार कर रहे,
घृणा द्वेष स्पर्धा से पीड़ित, वन पशुओं से!
बिखर गया मानव का मन अणुवीक्षण पथ से
बहिर्जगत में, स्थूल भूत विज्ञान से भ्रमित!
अंतर्दृष्टि विहीन मनुज निज अंतर्जग के
वैभव से अनभिज्ञ, हृदय से शून्य, रिक्त है!

आज आत्मघाती वह, अपने ही हाथों से
महा जाति का महा मरण निर्माण कर रहा
भौतिक रासायनिक चमत्कारों से अगणित!
तर्क नियंत्रित यांत्रिकता के पद प्रहार से
ध्वस्त हो रहे अंतर्मन के सूक्ष्म संगठन
सत्यों के, आदर्शों के, भावों, स्वप्नों के,
श्रद्धा विश्वासों के, संयम तप साधन के,—
मनुष्यत्व निर्भर है जिन ज्योतिस्तंभों पर!

ऐसे मरणोन्मुख जग को, कहता मेरा मन
और कौन दे सकता नव जीवन, आश्वासन,
शांति, तृप्ति,—निज अंतर्जीवन के प्रवाह से
भारत के अतिरिक्त आज?—जो शाश्वत, अक्षर

अंतर ऐश्वर्यों का ईश्वर है वसुधा पर!
कहता मेरा मन, भारत के ही मंगल में
भू मंगल, जन मंगल, देवों का मंगल है!—
—देव, आप आशीर्वाद दें जन भारत को!

श्री अवनीन्द्रनाथ ठाकुर की ७५ वीं वर्ष गाँठ पर—

आज आपकी वर्ष गाँठ के शुभ अवसर पर
करते हम समवेत प्रार्थना, वृद्ध चित्र कवि,
फिर फिर ऐसे हर्ष दिवस आएँ, दे जाएँ
नवल सुनहली गाँठ आप के वयस सूत्र में !

पक्व वयस के रजत मास औ' स्वर्ण वर्ष नव
अंकित अनुक्षण करें काल के पट पर अक्षय
शरद इंदु स्मित कीर्ति शुभ्र व्यक्तित्व आप का,—
केश श्मश्रुओं की शोभा रँग शुभ्र, शुभ्रतर,
स्वप्न तूलि से अपनी; हे रंगों के गायक,
जिसने वाणी की अदृश्य स्वर झंकारों को
रूप रंग रेखा की आकृति में जीवित कर
इंद्र धनुष प्रभ स्वप्नों की स्मित रत्न श्री में
दिया बखेर, श्वसित कर रंगच्छाया को मृत !

शुभ्र वयस के रजत स्वर्ण क्षण लावें अविरत
नूतन स्वप्नों से रंजित भावी का वैभव,—

सतरँग स्वर्गिक पावक से शोभा-चित्रित कर
जीवन का चिर रहस सत्य, नयनों के सन्मुख—
नित अभिनव संतुलन, वर्ण मैत्री, सौष्टव भर!
अमर शिल्पि, मानव की आशाऽकांक्षाओं में
नव्य रंग रुचि संगति ध्वनि छाया प्रकाश भर
आप चेतना पट पर जन जन के रँग जावें
मनुष्यत्व की आभा रेखा छवि देवोपम,—
स्वर्ग आपको दिव्य स्वास्थ्य दे, दीर्घ आयु दे!

मर्यादा पुरुषोत्तम के प्रति

जय पुरुषोत्तम! विश्व संचरण में धारण कर
विश्व श्याम तन, तुमने मन में किया अवतरण
प्रथम बार त्रेता युग में: मानव संस्कृति का
जो प्रोज्वल निर्माण काल था, जब जन का मन
बहिर्जगत में बिखरा था इंद्रिय द्वारों से!

जीवन के दश मुख तम से आंदोलित अंतर
प्राणों के आवेगों की झंझा से ताड़ित
प्रलय सिन्धु सा गर्जन करता था दिगंत में
क्षुद्र लालसा के आवर्तों में आलोड़ित!

विकट अराजकता में पशु आकांक्षाओं की
संभव था तब नहीं शांत स्थिर जीवन यापन,—
वन जीवी, पशु जीवी मनुज, मनोजीवी तब
नहीं बना था: निद्रा भय मैथुनाहार की
देह वृत्तियों से चालित वह, जंतुमात्र था!
प्रथम संचरण था वह मन का: भू जीवन पर
नहीं नियंत्रण था उसका वह असंगठित था!

उतरे थे तुम रजत पुरुष तव अंतर्नभ से
सदाचार की दिव्य शुभ्र आभा से मंडित,
शशि किरणों से प्रहसित शरद नीलिमा-से नव!
जीवन के तम को, छाया सा, सहज प्रणत कर
मानव के पद तल पर, तुमने तन के ऊपर
मन को किया प्रतिष्ठित था, जन मंगल के हित!
क्षुब्ध उच्छ्वसित प्राणों के उन्मद सागर को
शासित कर, बाँधा मर्यादा सेतु चिरंतन,
मर्यादा पुरुषोत्तम! वहिर्मुखी जीवन के
दश शीषों को मनोभूमि पर किया विलुंठित
रश्मि शुभ्र चेतना तीर से, चीर भू-तमस,
वैदेही सी मनश्चेतना को विदेह कर!

प्रथम विजय थी वह जीवन पर मानव मन की
तरुण अरुण-से विहँसे थे तुम मनश्चूड़ पर
सूर्य मनस् के स्वर्ण विम्व! जव अजित वासना
हुई संयमित संस्कृत: नव जीवन मानों में
ऊर्ध्व प्रस्फुटित, विकसित हो, मनुजोचित वन कर!

पूर्ण किया वह वृत्त कृष्ण युग में था तुमने
प्राणों में जव हुए अवतरित तुम द्वापर में,
मर्यादा के पुलिनों में जीवन शोभा का

दिव्य ज्वार लहरा,—अंतर के रस से झंकृत
जीवन का आनंद, प्रेम, सौन्दर्य बोध दे!
—वह विकास परिणति का स्वर्णिम वैभव युग था!

एक बार फिर उतरो, अंतर्मन के सारथि,
भू की आकांक्षा के नव विकसित शतदल पर,
आज मनोजीवन, प्राणों के जीवन के स्तर
जीर्ण, विरस, विश्री लगते, सौन्दर्य हीन हो!
विगत चेतना,—कभी विशाल शुभ्र सरसिज सी,—
मूँद रही अब मन के दल युग की संध्या में,—
स्रोत हीन पुलिनों सी नीरस रीति नीतियाँ
सींच नहीं पातीं जीवन की उर्वरता को!

आज और भी नीचे उतरो प्राणों से तुम,
जीवन के तम के नीचे उज्वल प्रकाश की
स्वर्ण शुभ्र दो रेख खींच, नव प्रतिपत् शशि-सी!
विहँस उठें स्वप्नों से उपचेतन, अवचेतन.
धरा स्वर्ग बँध जाएँ एक क्षितिज के भीतर,—
एक नव्य आध्यात्मिकता आलोक ज्वार सी
मज्जित कर दे जीवन मन की सीमाओं को,
सीमा रहित चेतना की नव शोभा में उठ!

बहे एक अविराम धार में स्वर्ग चेतना
देह प्राण मन के भुवनों में संजीवन भर,
मनुज और भी निज अंतरतम में प्रवेश कर
ऊर्ध्व, गहन, व्यापक बन, निकले अधिक बहिर्मुख !

धरा चेतना की काले तम की पंखड़ियाँ
फुल्ल स्वर्ण लोहित रंजित हो युग प्रभात में
नव जीवन सौन्दर्य पद्म में विहँस उठें फिर
अंतर में भर अतिचेतन पावक पराग कण,—
प्राणों की सौरभ विद्युत् से हर्षित कर दिक् !
—हृदय कमल में भू के फिर उतरो, पुरुषोत्तम !

आवाहन

आओ हे, पावन हो भूतल !
फिर धर्म ग्लानि से पीड़ित जग,
फिर नग्न वासना उच्छृंखल,
जन परित्राण करने उतरो,
हे राम, परम निर्बल के बल !

फिर हुई अहल्या मनोभूमि,
चेतना, शिला सी जड़ निश्चल,
फिर मानवीय बन कर निखरे
भू शाप मुक्त हो, छू पदतल !

फिर जीर्ण हुआ युग चाप आज,
फिर वीर विहीन मही अंचल,
तुम वरो धरा चेतना पुनः
यह विश्व क्रांति का संकट पल !

लो, बनी विमाता पुनः कुमति,
वनवासी सत्य, गृही अब छल
फिर भौतिक मद का कंचन मृ
मोहित करता जन मन दुर्बल

वह भस्म रेख, यह नाश छोर,
फिर साधु वेश धर हँसता खल,
श्री हीन हृदय की पंचवटी,
हृत लोक चेतना, विश्व विकल !
श्रद्धा जटायु सी पंख कटी,
दो मुक्ति उसे, हे जन वत्सल,
आश्वस्त प्रणत को करो पुन:
निर्ममता के बाली को दल !

उद्वेलित भव जीवन वारिधि,
दुस्तर, अशांत : जन मन विह्वल;
फिर बाँधो नव चेतना सेतु
हो पार सत्य की सैन्य सकल !
लक्ष्मण सा ही अब शक्ति क्रांत
विश्वास मर्म आहत, निर्बल,
संजीवन दो फिर मूर्छित को
हनुमत् सी प्राणद शक्ति अचल !

अह, मेघनाद सा गर्जन भर
अणु त्रास कँपाता अंतस्तल,
तज कुंभ कर्ण सी युग निद्रा
जन अहं शृंग मद जाए ढल !

०

दश शीष उठाए घृणा घोर,
जलता उर उर में द्वेषानल,
फिर उसे परास्त करो मन में
जन जीवन हो संयुक्त, सफल!

वैदेही सी हो विरह मुक्त
चेतना, चूम प्रिय चरण कमल,
फिर राज्यारोहण करो, राम,
हृदयासन में, हो जन मंगल!

श्री अरविन्द के प्रति

(अ)

आज जब कि नीरस असार विश्री लगता जग-जीवन,
जीवन का सौन्दर्य फूल सा मुरझा रहा सुरभि-क्षण;
बिखर गया जब सतरँग बुद्बुद उर का स्वप्न अचानक,
जीवन संघर्षण से लोहित, गए मर्त्य के पग थक!

जीर्ण युगों की नैतिकता जब करती जन मन शोषण,
क्षुद्र अहं की दासी बन, स्वार्थों को किए समर्पण;
अंतर्विश्वासों के उन्नत शृंग रहे ढह भू पर
सूख गया चिर स्रोत प्रेरणा का, उर हुआ अनुर्वर!

आज जब कि मन प्राण इंद्रियों के क्षत विक्षत अँग-अँग,
पुनः चाहतीं वे गति-लय में बँधना देवों के सँग;
ध्वंस भ्रंश हो गए विगत आदर्शों के जब खँडहर,
कुचल रहा मानव आत्मा को जड़ भौतिक आडंबर!—

आज जब कि बुझ गई चेतना, अंधकार से उर भर,
चूर्ण हो गया हृदय सभ्यता का, नीरव संस्कृति स्वर!

दश शीष उठाए घृणा घोर,
जलता उर उर में द्वेषानल,
फिर उसे परास्त करो मन में
जन जीवन हो संयुक्त, सफल !

वैदेही सी हो विरह मुक्त
चेतना, चूम प्रिय चरण कमल,
फिर राज्यारोहण करो, राम,
हृदयासन में, हो जन मंगल !

श्री अरविन्द के प्रति

(अ)

आज जब कि नीरस असार विश्री लगता जग-जीवन,
जीवन का सौन्दर्य फूल सा मुरझा रहा सुरभि-क्षण;
बिखर गया जब सतरँग बुद्‌बुद उर का स्वप्न अचानक,
जीवन संघर्षण से लोहित, गए मर्त्य के पग थक!

जीर्ण युगों की नैतिकता जब करती जन मन शोषण,
क्षुद्र अहं की दासी बन, स्वार्थों को किए समर्पण;
अंतर्विश्वासों के उन्नत शृंग रहे ढह भू पर
सूख गया चिर स्रोत प्रेरणा का, उर हुआ अनुर्वर!

आज जब कि मन प्राण इंद्रियों के क्षत विक्षत अँग-अँग,
पुनः चाहतीं वे गति-लय में बँधना देवों के सँग;
ध्वंस भ्रंश हो गए विगत आदर्शों के जब खँडहर,
कुचल रहा मानव आत्मा को जड़ भौतिक आडंबर!—

आज जब कि बुझ गई चेतना, अंधकार से उर भर,
चूर्ण हो गया हृदय सभ्यता का, नीरव संस्कृति स्वर!

(ब)

तुम्हें पुकार रहा तव अंतर, भावी मानव ईश्वर,
नव्य चेतना, नव मन, नव जीवन का भू को दो वर!

स्वर्ण चेतना द्रवित जलद तुम, रजत तड़ित रुचि स्पंदित,
रत्नच्छाय सजल, रहस्यप्रभ शत शत सुरधनु मंडित;
दिव्य प्रेरणाओं की जगमग किरणों से चिर गुंफित,
मनस् पंख में ज्वलित अमर पिंडों को किए तिरोहित!

स्वर्मानस से उठ, उतरो, प्रभु, जन मन के शिखरों पर,
सूक्ष्म चेतना वाष्प कणों में लिपटा मानव अंतर;
नव जीवन सौन्दर्य में बरस, करो धरा मुख सस्मित,
अमृत चेतना के प्लावन में मर्त्य शोक कर मज्जित!

हे अतिचेतन, नव मानस वसनों में हो नव भूषित
नव आदर्श बनो तुम, जिसमें नव जीवन हो बिम्बित!
जीवन मन से ऊपर, तुम नव जीवन में, नव मन में
मानवता को बांधो अभिनव ऐक्य मुक्ति बंधन में!

अवतरण

कैसा था वह दिव्य अवतरण,—
(धन्य आज का ज्योति दिवस क्षण !)
चिदापगा का अतुल वेग चिर दुर्धर
मनश्चूड़ पर किया देव ने था जब धारण,—
जिज्ञासा से पुलकित अंतर !

स्वर्ण शुभ्र नीहार शृंग पर
फूटीं अगणित उषा क्या निखर,
रहस चकित आलोक क्रांति में
धरा स्वर्ग के डुबा दिगंतर ?
अमर ज्योति पिंडों का पावक
नव प्रकाश में आत्मसात् कर !

विश्व मनः संगठन हुआ क्या विकसित ?
नव्य सगुण संचरण देव में मूर्तित ?
रंग रंग की आभा पंखड़ियां
बरसीं क्या निःस्वर
सुरधनुओं सी भू पर ?

जब अंतर-तुषार शिखरों पर
उतरा अति आभा का जलधर,
ज्वलित तड़िल्लेखाओं से कर
झंकृत सूक्ष्म विश्व का अंबर,
ध्यान मौन तब देव सपंख मेरु से भास्वर
उड़ते थे क्या निश्चल, परम चेतना नभ पर ?

मनश्चेतना के ज्योत्स्ना जीवी इस जग में
बिखराते लघु तारक आभा जिसके मग में,
नत मस्तक हो, ध्यान मग्न यह पद्म अकिंचन
मानस जल में रह अलिप्त, नित करता चिंतन,—
निज शोभा-स्वर्णिम प्रभात में उसके लोचन
देव खोल दें, करुणा-कर से ज्योतित कर मन,—
करता श्रद्धा प्रीति से नमन !

गीत पद्म बंदी अलि उसके अंतर में स्थित
मुक्ति मांगता, अंतर्बंध करने को संचित,—
निज स्वर में भर कर, स्वर्गिक मधु वैभव नूतन,
गा गा, यह कर सके देव को हृदय समर्पण,—
स्वीकृत हो यह प्रणत निवेदन !

स्वप्न पूजन

स्वप्नों के यौवन से भर दो हे,
मेरा मन,
शोभा की ज्वाला में लिपटा
मेरा जीवन !

मेरे भावों के सतरँग स्तर
बाँधें स्वर्ग धरा का अंतर
जीवन की आकुल लहरों पर
ध्यान स्थित हो मेरा आसन !
अमर स्पर्श से खोलो हे
उर का वातायन,
प्राणों के सौरभ से पुलकित
कर मेरा तन !

श्रद्धानत मेरा मन निश्चित
करे शिखर सा ऊर्ध्व गमन नित,
बरसें आशीर्वाद सी अमित
उस पर तेरी स्वर्ण स्मित किरण !
मेरे कर्म वचन मन हों शुचि
तेरे पूजन,
स्वप्नों से दीपित कर दो हे
उर का प्रांगण !

वह मानव क्या ?

जिन आत्मा में हो नहीं प्रेम की अमर धार,
वह आत्मा क्या ?
जो काट न सके मृत्यु बंधन !

जिस मन में तप की, मति में प्रतिभा की न धार,
वे मति मन क्या ?
जो कर न सकें सत्यालोचन !

जिन प्राणों में, जीवन में इच्छा की न धार,
वह जीवन क्या ?
जो कर न सके भव संघर्षण !

यदि भले बुरे का जगे इंद्रियों में विचार,
यदि मन में छा जाए जीवन का अंधकार,
यदि आत्मा को दे डुबा प्राण वासना ज्वार,
जीवन निरीह, संघर्ष विरत हो, निरुपचार !

तब ये सब क्या ?
इनका न प्रयोजन ! ...यही मरण!
वह मानव क्या ?
जो करे न अमरों सँग विचरण !

जिज्ञासा

किसकी लय में घूम घूम
बन गए स्वयं तुम भास्कर
ओ नीरव नीहार, ज्योति पिंडों में
अगणित हँस कर !

कौन सत्य वह ? महाशून्य तुम
जिससे गर्भित हो कर
महा विश्व में बदल गए
धारण कर निखिल चराचर !

किसके बल से पंच भूत ये
सतत कर्म में तत्पर ?
शब्दित नभ, चल अनिल,
द्रवित जल, दीप्त अग्नि, भू उर्वर !

पद्म पत्र पर तुहिन स्वप्न सा
हँसमुख चंचल सुंदर
किसने जीवन का सम्मोहन
दिया मर्त्य भव में भर !

कौन मृत्यु के अंध तमस को
अमृत स्पर्श से छू कर
स्वर्ण चेतना से भर, जग का
करता नव रूपांतर ?

इन प्रश्नों का मुझे नहीं
शब्दों में दो प्रिय, उत्तर,
तदाकार कर हृदय
महज समझा दो हे करुणाकर !

प्रकाश क्षण

जाने मैं क्यों देखा करता
जो जन मन में चिर सुंदर!

वह किस युग का था खर्व अहं
किन युग सीमाओं का विभ्रम?
अब भेद विवर्तन युग का तम
आते प्रकाश क्षण निखर निखर!

यह व्यक्ति समाज जनित अंतर
भू-मन का स्थूल विभाजन भर,
वह एक चेतना रे अकूल
जो बनी बिन्दु गुंफित सागर!

अब सूक्ष्म हो रहा नव विकसित,
अब व्यक्ति विश्व भी परिवर्तित,
हो रहा रजत मन स्वर्ण द्रवित
आ रहा धरा पर स्वर्ग उतर!

चेतन हिरण्य से अंतः स्मित
हों व्यक्ति समाज नवल कल्पित,
[illegible]गत अहंता व्य में हो मज्जित
[illegible] चेतना ऊर्ध्व विचरे भू पर!

करुणा धारा

आज उठा लो जन मन से
दुःस्मृति का अंचल,
मनुज चेतना से भू-मन की
छाया श्यामल !

अतल मौन नयनों में डूबे
निखिल विश्व जीवन के अंतर,
विहँस उठे आलोक कमल सी
मुख शोभा मानस के जल पर

आज बखेरो निज स्मिति की
पंखड़ियाँ निश्छल !

शोभा के शिखरों पर उतरे
प्राणों की अभिलाषा निःस्वर,
भाव गौर चूड़ों पर बिखरे
रहस स्वप्न अंतर के सुंदर,

आज खोल दो नवल
चेतना का वक्षःस्थल !

मनुज प्रेम की बाँहों में बँध
विस्मृत हों जगती के सुख दुख,
आज तुम्हारी करुणा धारा
मर्त्य धरा के प्रति हो उन्मुख,

श्रद्धानत जन भाल उठे
पद रज से उज्वल,
जीवन सुंदरता से रक्तिम
रँग दे पद तल !

रँग दो

रँग दो हे, रँग दो आकुल मन!
अमर रूप स्रष्टा, किरणों की
तूली से रँग दो उड़ते घन!

शशि से रँग छाया प्रभ अंतर,
क्षणप्रभा से इच्छा के पर,
वरसा दो उर के अंबर में
शोभा का नीरव सम्मोहन!

आशा का हो इंद्र चाप वर
इंद्र चाप में स्वप्नों के शर,
विरह अश्रु का भाव जलद हो,
रंग रहस्यों के हों गोपन!

रँग दो नव शोभा से लोचन,
प्रीति मधुरिमा से स्वर्णिम मन,
गीति चुंवनों से मदिराधर
स्वर्ग रुधिर से रँगो कर चरण!

उलट रश्मियों के सतरँग घट
रँग दो मेरा प्राणों का पट,
रँग रँग की पंखड़ियों में हँस
फूट पड़े अंतर का यौवन!

रँग जाए जो मेरा अंतर
गोचर तुम बन सको अगोचर,
नव्य चेतना के पावक कण
मैं कर सकूँ धरा पर वितरण!

शोभा जागरण

बरसो हे शोभा चेतन क्षण !
विश्व समीरण के स्पंदन में
लहराए सौन्दर्य चिरंतन !

शोभा से आंदोलित हो जग,
शोभा में कुसुमित जीवन मग,
शोभा के स्मित छायातप का
क्रीड़ा स्थल हो मन का प्रांगण !

धुलें निखिल भू मन के कल्मष,
मुक्त बनें जीवन में परवश,
इच्छाओं के रण में विजयी
मन पर हो अंतर्शोभा मन !

सृजन करें नव भू शोभा जन,
जो अपूर्ण वह बनें पूर्णतम,
जीवन शोभा हो जन चिन्तन,
अंतर शोभा स्वप्न-जागरण !

मानसी

रँग उड़ते भावों के बादल,
रेखा शशि सा दिखा सलज मुख
फिर फिर हो जाती तुम ओझल!

तुहिन अश्रु वाष्पों में कोमल
कुंद कली सी लिपटी उज्वल,
भरती तुम आकुल अंतर में
सुधा द्रवित ज्वाला स्मिति निश्छल!

बरस रहा नीरव सम्मोहन,
अँगड़ाता मन स्वप्नों का वन,
मधुर गुंजरण भर, अब बहता
प्राण समीरण मुख में चंचल!

उतर रहस्य विचरते गोपन,
पद चापों से कँपता निर्जन,
तंद्रिल छाया की घाटी में
गा उठता अंतर जल कल कल!

मौन मधुरिमा से भर अंतर,
आओ, मानसि, हृदय में उतर,
म्लान वेदना के आनन में
उठा करुण आँसू का अंचल!

अंतर घन

बिजली कँप कँप उठती घन में,
प्राणों की अभिलाषा मन में!
तुम आभा देही बन जगती
तड़ित चकित आशा के क्षण में!

बरस रहा स्मृतियों का बादल
लिपटा मन में ममता-कोमल,
स्वप्नों के पंखों की छाया
फैला नीरव उर आँगन में!

यह आलोक मिला जीवन-तम,
प्रीति प्रतीति भरा संशय भ्रम,
विरह मिलन की मर्म व्यथा का
मंद्र निनाद ध्वनित प्रतिकण में!

सूक्ष्म वाष्प का यह अंतर घन,
तेरी आभा से नव चेतन,
इंद्र धनुष शोभा से मंडित
गर्जन भरता हृदय गगन में!

अमर स्पर्श

खिल उठा हृदय,
पा स्पर्श तुम्हारा अमृत अभय !

खुल गए साधना के बंधन,
संगीत बना, उर का रोदन,
अब प्रीति द्रवित प्राणों का पण;
सीमाएं अमिट हुईं सब लय !

क्यों रहे न जीवन में सुख दुख,
क्यों जन्म मृत्यु से चित्त विमुख ?
तुम रहो दृगों के जो सन्मुख
प्रिय हो मुझको भ्रम भय संशय !

तन में आएँ शैशव यौवन
मन में हों विरह मिलन के व्रण,
युग स्थितियों से प्रेरित जीवन,
उर रहे प्रीति में चिर तन्मय !

जो नित्य अनित्य जगत का क्रम
वह रहे, न कुछ बदले, हो कम,
हो प्रगति ह्रास का भी विभ्रम,
जग से परिचय, तुमसे परिणय !

तुम सुंदर से बन अति सुंदर
आओ अंतर में अंतर तर,
तुम विजयी जो, प्रिय, हो मुझ पर
वरदान, पराजय हो निश्चय !

प्रीति परिणय

प्रिय, बनते तुम विरह प्रणय में,
प्रलय सृजन के गीत हृदय में!

उर के वाष्प जलद कण झर झर
हँस उठते मोती बन सुंदर,
तुहिन कणों का हार गूँथती
प्रातः किरण तुम्हारी जय में!

जीवन का उठ कातर क्रंदन
प्राणों को छू बनता गायन,
सुन मधुकर का आर्त गुंजरण
खिलते मुकुल मौन विस्मय में!

वन शूलों से बिंधा मृदुल अँग
फूलों के तन मन उठते रँग,
विवश कर दिए तुमने सुख दुख
बाँध प्रीति के चिर परिणय में!

नीचे सागर भरता गर्जन,
हँसता ऊपर चंद्र विमोहन,
बढ़ती जाती जीवन वेला
अमर प्रतीक्षा के विनिमय में!

नव आवेश

जाग्रत् मन से पहिले तुममें
मिल जाता अंतर्मन !

जब तम में डूबा रहता जग,
दृग अपलक तकते निर्जन मग,
तुम स्वप्नों के पग धर आते
अंतर्पथ से गोपन !

बजते निःस्वर नुपुर मर्मर,
सुन पड़ते अश्रुत वंशी स्वर,
बुद्धि चकित रहती, बज उठता
उर में स्वागत गायन !

भू क्रंदन बन जाता कूजन,
शांत निखिल जीवन संघर्षण,
क्षण भंगुरता के आसन पर
दिखता मौन चिरंतन !

चिर परिचित यह मानव जीवन,
स्वप्न स्नात, लगता नव शोभन,
अंतरतम में जगता अविदित
एक अतुल आकर्षण !

प्रीति परिणय

प्रिय, बनते तुम विरह प्रणय में,
प्रलय सृजन के गीत हृदय में!

उर के वाष्प जलद कण झर झर
हँस उठते मोती बन सुंदर,
तुहिन कणों का हार गूँथती
प्रातः किरण तुम्हारी जय में!

जीवन का उठ कातर क्रंदन
प्राणों को छू बनता गायन,
सुन मधुकर का आर्त गुंजरण
खिलते मुकुल मौन विस्मय में!

वन शूलों से बिंधा मृदुल अँग
फूलों के तन मन उठते रँग,
विवश कर दिए तुमने सुख दुख
बाँध प्रीति के चिर परिणय में!

नीचे सागर भरता गर्जन,
हँसता ऊपर चंद्र विमोहन,
बढ़ती जाती जीवन
अमर प्रतीक्षा के विनिग

नव आवेश

जाग्रत् मन से पहिले तुममें
मिल जाता अंतर्मन !
जब तम में डूबा रहता जग,
दृग अपलक तकते निर्जन मग,
तुम स्वप्नों के पग धर आते
अंतर्पथ से गोपन !

बजते निःस्वर नुपुर मर्मर,
सुन पड़ते अश्रुत वंशी स्वर,
बुद्धि चकित रहती, बज उठता
उर में स्वागत गायन !

भू क्रंदन बन जाता कूजन,
शांत निखिल जीवन संघर्षण,
क्षण भंगुरता के आसन पर
दिखता मौन चिरंतन !

चिर परिचित यह मानव जीवन,
स्वप्न स्नात, लगता नव शोभन,
अंतरतम में जगता अविदित
एक अतुल आकर्षण !

शोभा पर शोभा पड़ती झर,
सहज हर्ष से कँपता अंतर,
मज्जित कर युग सीमाओं को
वहता अंतर्जीवन !

जब तक होगी क्रांति समापन,
वांछित होगा विश्व संगठन,
एक नवल आवेश करेगा
मानव अंतर धारण !

स्वप्न गीत

(गर्भस्थ के प्रति)

आओ, प्यारे मुन्ना, आओ,
भू पर चंदा से मुसकाओ,
नन्हे, आओ !

तुम स्वप्नों के पथ से आओ,
नव जीवन के रथ से आओ,
मुन्ना हो तो नयन जुड़ाओ,
मुनिया हो तो हृदय चुराओ ! नन्हे०

झिलमिल करते जुगनूँ वन में,
बिजली छिपती दिपती घन मे,
जगते तुम आशा-से मन मे
मधुर रूप धर हमें रिझाओ !

खेल रहीं लहरें चल जल में,
लोट रही मृदु रज भूतल में,
स्वप्नों की छाया आँचल में
कँपती, उसको सत्य बनाओ !

भूल हृदय की मृदु धड़कन में,
फिर फिर जग मन के लोचन में,
तुम रहस्य-से गोपन क्षण में
लिपट मधुर प्राणों से जाओ !

स्रोत फूट पड़ता कलरव कर,
वंशी बज उठती मधुरव भर,
तुम नीरव स्मिति से मन को हर
निज क्रंदन किलकार सुनाओ !

आओ, खिलता कमल नाल पर,
आँख खोलती कली डाल पर,
आती नव मंजरि रसाल पर
फूल सदृश मुखड़ा दिखलाओ !

दूज रेख-से उगो गगन पर
ओस बूंद-से उतरो, सुंदर,
जगो प्रात तारा-से दृग हर,
नव बालारुण-से मुसकाओ !

बादल से स्वातिज बन आओ,
पपीहरे की प्यास बुझाओ,
कोयल चाहेगी, सँग गाओ,
मैना, प्यारा नाम बताओ !

वापी में अब तारक उज्ज्वल,
सीपी के उर में मुक्ताफल,
सुरँग फूल के अंचल में फल,
तुम गोदी में, लाल, सुहाओ !

सुंदर तन से सुंदर तन धर,
दीपक से दीपक लौ-से वर,
लहरी से लहरी-से उठ कर
फिर नव जीवन क्रम दुहराओ !

शाश्वत-से, लघु तन में सीमित,
रवि-से, हिमकण में प्रतिबिम्बित,
जग-से नयन कनी में अंकित,
पूनो से प्रतिपत् बन आओ !

तुम अदम्य यौवन की आशा,
नारी जीवन की अभिलाषा,
प्राणों की ममता-परिभाषा,
मूर्तिमान नव तन धर लाओ !

आओ, तुम देखोगे गांधी,
जिनसे हमें मिली आज़ादी,
स्यात् तुम्हें पहनावें खादी,
आओ, अब न अधिक बिलमाओ !

तुम स्वतंत्र भारत में आओ,
मुक्त तिरंगे को फहराओ,
फिर फिर गांधी की जय गाओ,
नवयुग के सँग चरण बढ़ाओ,
नन्हे आओ!

× × ×

बाबू को पाओगे बंदर,
मा को चित्र लिखी सी सुंदर,
आओ तुम विकसित नर बनकर,
कुल दीपक, कुल रत्न कहाओ!

आओ राजा, आओ रानी,
तुम्हें बुलातीं मौसी नानी
तुम सच हो,—तुम नहीं कहानी,
पापा को आ नाच नचाओ!

'गांधी भवन,' मुबारकबादी!
कल की सी घटना है शादी!
खुश होंगी पर सुनकर दादी,
तुम पोते को गोद खिलाओ!
मुन्ने आओ!

त्रिवेणी

तापसी

तीर्थराज जो जन-संस्कृति का केन्द्र प्रतिष्ठित,
उस प्रयाग से कौन नहीं भारत में परिचित ?

शुभ्र नील लहरों का जहाँ स्फुरत्प्रभ संगम,
अक्षयवट, ऋषि भरद्वाज का विश्रुत आश्रम !

गंगा यमुना सरस्वती की निर्मल वेणी
मिल कर बनती जहाँ पुण्य जल ग्रथित त्रिवेणी !

रश्मि चपल शत छायाभाओं से जो गुंफित,
युग युग के भू मानस पट री लगती जीवित !

ऊर्मि मुखर अब गंगा यमुना गौर श्याम तन
सरस्वती के सँग गोपन करतीं संभापण !

लोक तारिणी गंगा अपनी कहती गाथा,
ताप हारिणी, हरती जो जन मन की बाधा !

लो, वह आती, बजते चलं किरणोज्वल पायल,
टकरातीं संगीत लहरियाँ कल कल छल छल !

गंगा

मैं विष्णुपदी, मैं सुरसरिता,
मैं हरि चरणों से आई,
मैं पुण्य त्रिपथगा, स्वर्गंगा की
सुधा धार हूँ लाई!

शत रश्मि ज्वलित निर्झर सी उतरी
मैं शंकर के शिर पर,
शोभा में लहरी, जटा शंकरी
कवियों से कहलाई!

मैं सगर वंश हित, विदित,
भगीरथ श्रम से आई भू पर,
स्वर्गीय तान सी जह्नु श्रवण में
पैठ सहज विलमाई!

मैं हिम तनया, मैं मेरु-आत्मजा-
मनोरमा की दुहिता
मेरी धारा में जन मन की
धारा अविराम समाई!

मेरे पुलिनों पर बसे प्रथित जन तीर्थ,
ग्राम, पुर, जनपद,
मेरे अंचल में मुक्ति मनुज ने
जन्म मरण से पाई !

मेरी लहरों के कंपन में
शत शत हृदयों का स्पंदन,
रवि शशि की किरणें भरतीं जिनमें
अमरों की तरुणाई !

मैं उर्वर रखती धरती का उर
सूक्ष्म मृत्तिका भर कर,
मेरी करुणा अंचल सी जीवन-
हरियाली में छाई !

आओ हे, अंतस्तल में डूबो,
धोओ मन के कल्मष,
निस्तल अकूल जीवन की
शाश्वत धारा यह लहराई !

तापसी

बदल गया सहसा जल का फेनिल छाया पट,
छप् छप् टूट रहा चाँदी सा बालू का तट !
वेगवती यमुना अब आती रंगस्थल पर
निश्छल गंगा लेती उसको बाँहों में भर !
क्रंदन करता रह रह उसका आकुल अंतर,
सुनिए उसके अश्रु द्रवित वंशी के से स्वर !

यमुना

मैं सूर्य सुता, मैं यम भगिनी कहलाती,
मैं तुमसे मिलते, धीरे, आज लजाती
मेरे तट पर थे रास रचे मोहन ने
अब तक अस्फुट किंकिणियों की ध्वनि आती
जल में शत तड़ित लताओं सी सुंदरियाँ
तिरती थीं, कल क्रीड़ा करतीं, इठलातीं !
जिनकी देखा देखी ये चंचल लहरें
शोभा ग्रीवा मटकातीं, भृकुटि नचातीं
मेरे कलरव में गूँज रहे मुरली स्वर
स्वप्नों की छाया आँचल में छहराती !

युग युग की वे नीरव संगीत हिलोरें
मेरे उर में हा हा भर हृदय कँपातीं !

गंगा

सखि, धीर धरो, तुम शांत करो अपना मन,
तुमसे मिल कर परिपूर्ण हुआ भू-जीवन !
सुख दुख पुलिनों में बहती मानस धारा
नश्वर जग में अनुभव अविनश्वर थाती !
परिवर्तित विकसित होता जग जीवन क्रम,
विपदा संपदा न रहतीं कभी चिरंतन !
तेरे उर में बहता युग युग का संचय
यह निस्तल नील गभीर धार बतलाती !
तू ज्ञान सभ्यता संस्कृति की स्रोतस्विनि,
जीवन मुक्ता, संयुक्ता, प्रीति तरंगिणि,
इस मर्म व्यथा पर भू-सुख सकल निछावर
तू श्याम विरह में छल छल अश्रु बहाती !

तापसी

यमुना मन के भाव सखी से नहीं छिपाती,
वह अपने आक्रोश रोष की कथा सुनाती !

उसके उर में सुलग रही अब दारुण ज्वाला,
वह विद्रोहिणि, वेग न जाता उग्र सँभाला !

यमुना

सखि ! तुमको पा कृतकृत्य हुआ मेरा मन,
वह सुख ये मुखर हिलोर नहीं कह पातीं !

मैं पार कर चुकी गिरि प्रांतर, बीहड़ वन,
कूलों की कटु सीमाओं से टकराती !

मैं चीर धरित्री का निर्मम वक्षः स्थल
अवचेतन की अँधियाली सी लहराती !

गर्जन भरता अहरह यह उद्वेलित मन,
मेरे अंतर में क्रांति चतुर्दिक् गाती !

दीनों दुखियों के मनस्ताप से मंथित
मैं प्रलय बाढ़ बन युग के पुलिन डुबाती !

मैं सुख स्पर्शों में पली, मर्म-आहत हो,
नागिन सी उठ, फेनों के फन फैलाती !

युग संगम हो जन जन के मन का संगम
मैं भू मन में फिर ज्वार अदम्य उठाती !

तापसी

गंगा जी गंभीर गिरा कहतीं यह सुन कर
हरि चरणों का प्रीति स्रोत है उनके भीतर !

गंगा

तुम दुर्दम सूर्य सुता हो, संज्ञा-जाता,
दीनों का दुख कब तुमसे देखा जाता ?
अमरों की शांति लिए गह मेरी धारा
तुम मेरे उर में नव प्रेरणा जगातीं !
मैं सुनती हूँ अपने भीतर अश्रुत स्वर
स्वर्णिम नूपुर ध्वनि भरती निःस्वर मर्मर !
वह सुनो, मौन अंबर में जगता गुंजन,
यह कौन उषा सी नव अरुणोदय लाती ?

तापसी

गंगा यमुना के संगम का धर पावन तन
सरस्वती का होता अंतः स्फुरित अवतरण !

वह अदृश्य, केवल जन मन संगम में गोचर,
विश्व समागम से अतीत, शाश्वत, लोकोत्तर !
सुनिए, उर उर में अव उसके चिर नीरव स्वर,
वह इंद्रिय अग्राह्य, अनिर्वचनीय, सूक्ष्मतर !

सरस्वती

मैं अंतः सलिला, चिर विमला,
अंतर्मुख धारा हूँ अचपल
मैं मनः शिखर से स्वतः निखर
वहती निःस्वर, भर अंतर्जल !

धर ऊर्ध्व चरण, शत गूँथ किरण,
करती रहस्य पथ से विचरण,
अंतर प्लावन भरती प्रतिक्षण
मैं ज्ञान-गहन कर अंतस्तल !

चेतना ज्वार सी दुर्निवार
मैं विश्व पुलिन करती मज्जित,
लहरा कर, डुबा निखिल अंतर,
वहती अकूल निस्तल निर्मल !

तापसी

कालिन्दी की क्षुब्ध तरंगें क्रोध से सिहर
प्रश्न पूछतीं, सरस्वती को संबोधन कर !

यमुना

तुम छाया हो अथवा माया ?
मैं तुमको समझ न पाती, !
तुम सच कहती, क्या तुम वहती ?
क्यों प्रकट नहीं हो जाती ?

फेनिल उच्छल, बढ़ कर कल कल
क्यों गरज न तुम लहराती ?
गिरि गहन चीर गति से अधीर
भू पथ क्यों नहीं बनाती ?

ऋजु कुंचित जग का मग निश्चित,
पग पग पर बाधा अगणित,
छिपती भीतर, आकर बाहर
जन दुख क्यों नहीं बँटाती ?

सरस्वती

मैं कहने आई, रुको, रुको,
गति ही में मत बह जाओ,
ओ इच्छा से पागल सरिते,
सोचो, मन को समझाओ!

तुमने बाहर बाहर बढ़ कर
हों पार किए गिरि कानन,
पर बढ़ता भीतर हृदय रुदन,
मुझसे मत भेद छिपाओ!

तुम उद्वेलित, आकुल, अशांत,
गत आवेशों से मंथित,
तुम आवर्तों में घूम रही,
मुझको मत मार्ग सुझाओ!

तुम क्रुद्ध रुद्ध नित उफनाती,
टकराती, रँग रँग जाती,
मुझको भय है, तुम अतल गर्त में
कहीं नहीं गिर जाओ!

भीतर देखो, भीतर है मति,
बाहर गति, अंधी गति है,
तुम शांत धीर गंगा में मिल
गति को गंभीर बनाओ !

गंगा

मेरी भी अभिलाषा यही,
जन संगम बने सनातन,
हो विश्व समागम, हिल मिल कर
विकसित वर्द्धित हो जन मन

इस हृदय मिलन में अवगाहन कर
भू मन हो चिर पावन
बाहर भीतर जड़ चेतन मय
जीवन हो पूर्ण प्रतिक्षण !

गंगा यमुनी जीवन धारा
नित बहे अबाध चिरंतन,
संयुक्त हृदय, संयुक्त कर्म हों
जन मंगल के साधन !

तापसी

गंगा यमुना गातीं जीवन मंगल गायन,
फेन हार रच, सरस्वती को करतीं अर्पण !

गंगा-यमुना

भू मंगल हो, भव मंगल हो !
जीवन शोभा से उर्वर जग,
प्रीति द्रवित जन अंतस्तल हो !
जन मंगल हो, जग मंगल हो !

जब जब पंकिल हों जीवन तट,
तमस रुद्ध मानव उर के पट,
करुणा धारा सी अंतर से
फूटो तुम, भू मग उज्वल हो !

विस्तृत मुक्त मिले पथ बाहर,
पूर्ण अगाध बहे जल भीतर,
सस्यान्वित जग जीवन प्रवाह नित,
श्यामल धरणी का अंचल हो !

सकल स्रोत मिल एक धार हों,
लोक समागम आर पार हो,
ज्ञान शक्ति संचय अपार हो,
युग का युद्ध अनल शीतल हो !